॥अक्षरातीत श्रीकृष्णपरमात्मने नमः॥

(श्रीकृष्णप्रणामीधर्म - श्रीमन्निजानन्द संप्रदाय)

विराट विज्ञान दर्पण

श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र चे. ट्रस्ट

सुख शीतल करुं संसार

प्रणाम

प्रकाशक :-

श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र के संस्थापक
परमपूज्य "वाणी आचार्य"
श्री दीनदयालजी महाराज
बोरीवली (प.) मुंबई-४०० ०९२.

लेखकः
-दीनदयाल

अक्षरातीत श्रीकृष्ण परमात्मने नमः
(श्रीमन्निजानन्दो विजयते)

द्वाविमौ पुरूषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।
उत्तमः पुरूषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।।
- (गीता, अ. १५/१६, १७)।

अतः - क्षर, अक्षर और उत्तम पुरुष, अक्षरातीत ब्रह्म का पृथक-पृथक स्वरूप निर्णय कर, तीनों में तादात्म्य निश्चय कराना ही इस ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य है।

- समर्पणम् -

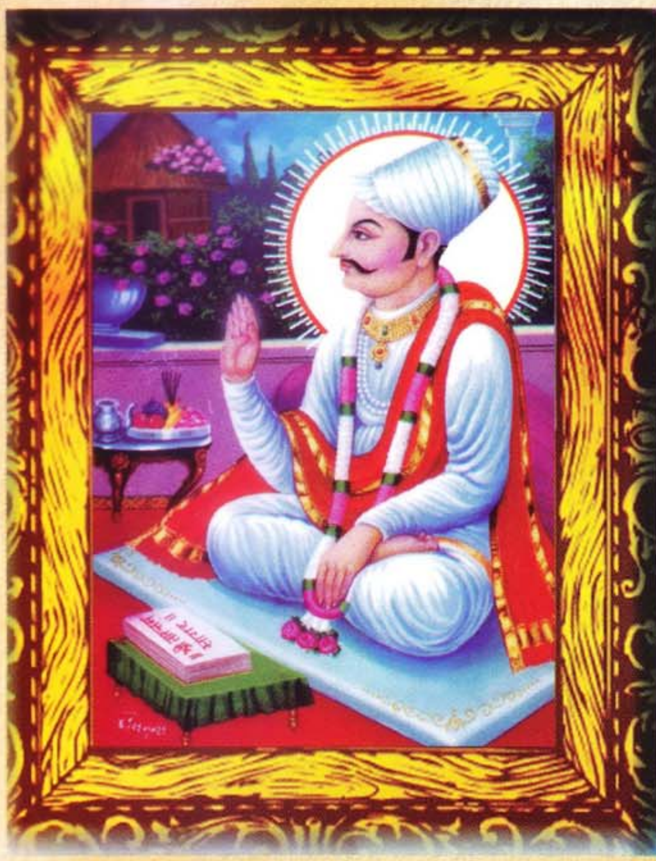

❊ महामति श्री प्राणनाथजी ❊

हे धनी !

मैं यह पुस्तक ''विराट विज्ञान दर्पण'' आपके कोमल चरणकमल में समर्पण करता हूँ ।

- लेखक

- श्रीराज -

विराट विज्ञान दर्पण

बि. सं. २०६०
ई. स. २००४
ता. ३-५-०४
प्रथमावृत्ति-२०००

विजयाभिनन्द
शाका-३२६
सेवा रू. ३५/-

श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र

३, सुंदरधाम, जांमली गली,
बोरीवली (प.), मुंबई-९२.
दूरध्वनी क्र. २८९९८७५८.

ए मधे जे पुरी कहावे, नौतन जेहनुं नाम ।
उत्तम चौदे भवनमां, जिहां वालानो विश्राम ।।

– महामति प्राणनाथ –

श्रद्धांजली

गुरुप्रवर साक्षात् धामधनी स्वरुप मेरे सद्गुरु परमपूज्य 'वाणी – आचार्य' – परमहंस बाबाजी श्री लक्ष्मीदास महाराजजी, जो परमपावन आद्य धर्मपीठ १०८ श्री ५ नवतनपुरी धाम, जामनगर में 'वाणी प्राचार्य' के रुप में स्थायी विराजमान थे । उन्होंने ई. स. १९९२ में ३ मई, रवि-वार के दिन अपने परमपावन वरिष्ठ करकमलों द्वारा बोरिवली (प.) मुंबई–९२ में 'श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र' चे. ट्रस्ट का उद्घाटन किया और 'श्री तारतम तालीम प्रशिक्षण केन्द्र' श्री ५ नवतनपुरी धाम की शाखा के रुप में इस संस्था को भी स्थापित कर मुझे इसके संचालक के रुप में स्थायी कर दिया । मुझे आध्यात्मिक मार्ग विषयक जितना भी ज्ञान प्राप्त हुआ तथा मेरे द्वारा जो, जितना भी समाज – सेवा का कार्य हो रहा है, वह सब मेरे परमपूज्य बाबाजी की ही दया – कृपा रुपी देन है ।

अतः मैं 'श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र' की ओर से समस्त धामस्थ सुंदरसाथजी के प्रति 'थेयो थिएथो जे थींदो' –(सिंधी – प्र.७/ चौ.३३) अर्थात् जो जितना भी सेवा – कार्य हुआ, हो रहा है तथा आगे होगा, वह सब अपने साक्षात् धामधनी स्वरुप गुरुप्रवर परम-पूज्य श्री बाबाजी के प्रति 'श्रद्धांजली' के रुप में समर्पित करता हूँ ।

– दीनदयाल

– गुरुप्रवर –
परमपूज्य "वाणी आचार्य"
परमहंस बाबाजी श्री लक्ष्मीदासजी
(ई.स.१९०९ /२२.११.२००२)
श्री ५ नवतनपुरीधाम, जामनगर.

प्रणाम

- श्रीराज -

विराट विज्ञान दर्पण

- लेखक -

श्री प्राणनाथ ज्ञान केंद्र के संस्थापक
परमपूज्य ''वाणी आचार्य''
श्री दीनदयालजी महाराज
बोरीवली (प.), मुंबई-४०० ०९२.

।।अक्षरातीत श्रीकृष्णपरमात्मने नमः।।

(श्रीकृष्ण प्रणामी धर्म-श्रीमन्निजानन्द सम्प्रदाय)

विराट विज्ञान दर्पण

लेखक

परमपूज्य ''वाणी आचार्य'' श्री दीनदयालजी महाराज

संरक्षक - श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र चेरीटेबल ट्रस्ट,

बोरीवली (पश्चिम), मुंबई - ४०० ०९२.

प्रकाशक : -

(१) हिन्दी : - श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र चेरीटेबल ट्रस्ट,
c/o. श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र के संस्थापक
परमपूज्य ''वाणी आचार्य''
श्री दीनदयालजी महाराज
बोरीवली (वेस्ट), मुंबई - ४०० ०९२.

(२) गुजराती : - ज्ञान केन्द्र -
c/o. श्री प्राणनाथ महिला मंडल (रजि.)
बोरीवली (वेस्ट), मुंबई - ४०० ०९२.

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१. आद्य धर्मपीठ
श्री ५नवतनपुरी धाम,
श्री कृष्ण प्रणामी
''खिजड़ा मंदिर'',
जामनगर (गुजरात).

२. श्री ५ महामंगल पुरी धाम,
श्री कृष्ण प्रणामी मोटा मंदिर,
सैयदवाडा, सूरत - ३.

३. श्री प्राणनाथ ज्ञान केंद्र,
३, सुंदरधाम, जांमली गली,
बोरीवली (प.), मुंबई - ९२.
दूरध्वनी क्र : २८९९८७५८.

४. श्री कृष्ण प्रणामी मंदिर,
मंगलधाम, रैली रोड,
कालिम्पोंग, दार्जीलिंग,
पश्चिम बंगाल, (भारत).

५. श्री कृष्ण प्रणामी सेवा समिती
(नवतन धाम),
केन्द्रीय कार्यालय,
डिल्ली बाजार, काठमाण्डू,
पोस्ट बॉक्स नं. २२९.

६. श्री कृष्ण प्रणामी मंदिर,
डिल्ली बाजार,
काठमाण्डू (नेपाल).

७. श्री कृष्ण प्रणामी
मूल मिलावा मानव मंदिर,
वेड रोड (वराछा रोड),
सूरत - ४.

मुद्रक : अक्षयस्नेह एंटरप्रायजेस, २२ - समर्थ निवास, जगन्नाथ भातनकर मार्ग, परेल.
मुंबई - ४०० ०१२. फोन : २४१५ ५३८२

विषय सूची

क्र.	विषय	पृष्ठ क्र.
१.	अनुभूमिका	१
२.	मंगलाचरणम्	५
३.	विराट ज्ञान की कुंजी	९
४.	महाकारण	१६
५.	प्रथम तरङ्ग - क्षर पुरुष	२१
६.	द्वितीय तरङ्ग - नरक लोक का वर्णन	५८
७.	तृतीय तरङ्ग - विराट की प्रथम समष्टि	६२
८.	चतुर्थ तरङ्ग - ॐ ज्योतिः स्वरूप	६७
९.	पञ्चम् तरङ्ग - मोहतत्त्व	७६
१०.	षष्ठ तरङ्ग - सात शून्य - इच्छाशक्ती	७९
११.	सप्तम् तरङ्ग - आदिनारायण का महाकारण स्वरूप	८२
१२.	अष्टम् तरङ्ग - महाशून्य समष्टि	९४
१३.	नवम् तरङ्ग - चार प्रकार के प्रलय	९८
१४.	दशम् तरङ्ग - अक्षर ब्रम्हाणि अव्याकृत ब्रह्म	१११
१५.	एकादश तरङ्ग - सबलिक ब्रह्म चिदानन्द लहेरी	१३७
१६.	द्वादश तरङ्ग - केवल ब्रह्म	१५१
१७.	त्रयोदश तरङ्ग - सत्स्वरूप	१५८
१८.	चतुर्दश तरङ्ग - कुटस्थ अक्षर - अक्षरातीत	१७०

❖ अनुभूमिका ❖

जिज्ञाषु - पिपाषु श्रद्धावान धर्मप्रेमी सज्जन सुमन ! आज कलिकाल ग्रस्त वैज्ञानिक युग की क्षणिक अवधि में भौतिक भाग-दौड़ के बीच, क्षणभङ्गुर मानव जीवन की सार्थकता को लक्ष्य बना कर यह "विराट विज्ञान दर्पण" नामक लघुग्रन्थ तैयार किया गया है। आशा है कि इस ग्रन्थ द्वारा समाज को अधिकाधिक ज्ञानानुभव होगा तथा यह ग्रन्थ् सामाजिक दृष्टि से यथा नाम तथा गुण युक्त साबित होगा, क्योंकि इस ग्रन्थ द्वारा आज का युवावर्ग आध्यात्मिक ज्ञान विषय में टकसाली बात करने में सक्षम बनेगा। उक्त दृष्टि से विचार करने पर यह लघुग्रन्थ आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत करने का सुहावना अवसर प्राप्त कर पाने के कारण मैं बहुत हर्षोल्लास का अनुभव कर रहा हूँ।

विराट का ज्ञान भौगोलिक ज्ञान है। यह ज्ञान पट (मानचित्र) के माध्यम से लोकालोक के बीच से ब्रह्म धाम पहुँचने तक का मार्गदर्शन कराने वाला ज्ञान है। जब तक मानवात्मा को साध्य और साधक के बीच की दूरी विषयक ज्ञान का मार्गदर्शन नहीं मिलता, तब तक उन्हें ब्रह्मलोक, ब्रह्मधाम, ब्रह्म और स्व-परात्मा के दर्शन-स्पर्शन और मिलन का सुख प्राप्त नहीं होगा। असंभव को संभव की ओर ले जाना अर्थात् इस विकट विषय को सरलातिसरल ढंग से समाज को ज्ञान-बोध द्वारा हृदयाङ्गम कराना ही इस लघुग्रन्थ का मुख्यातिमुख्य उद्देश्य है।

ऐसे तो विराट (सृष्टि) विज्ञान विषयक ज्ञान करानेवाले आत्मा-परमात्मा के बीच की दूरी को समझाने वाले छोटे-बड़े अन्य भी ग्रन्थ हैं, परन्तु वे भी वर्तमान समाज के लिए कठिनता का विषय बन गए हैं। यसर्थ इस ग्रन्थ द्वारा वर्तमान युगानुकूल वैज्ञानिक दिमाग वाले तथा साधारण जन भी अतिसुगमतापूर्वक आध्यात्मिक ज्ञानानुभव कर सकेंगे। इससे उन्हें कोई कठिनाई भी न होगी और वे आध्यात्मिक ज्ञान के सूक्ष्म तत्त्वों का भी भली-भाँती अनुभव कर सकेंगे। वस्तुत: समाज में, बिना कठिनाई के सरलतापूर्वक आध्यात्मिक ज्ञान को हृदयाङ्गम करने का उत्साह रखनेवालों की आवश्यकता का अनुभव होने के कारण ही इस ग्रन्थ का जन्म हुआ है; अन्यथा इस वर्तमान युग में पर्वत पर कुआँ खोदना कौन पसन्द करे!

अत: इस लघुग्रन्थ में मुख्यत: गीतादि, शास्त्रोक्त वर्णित तीन पुरुष विषयक ज्ञान का वर्णन सोपानवत् तथा शास्त्रोक्त प्रमाण सहित किया गया है। मुख्यत: इस ग्रंथ में क्षर तथा अक्षर पुरुष का यथातथ्य परिचय कराने पर ज्यादा जोर दिया गया है तथा इन दोनों पुरुषों से परे तृतीय उत्तम पुरुष हैं, जिन्हें श्रुतियाँ ''एकमेवाऽ द्वितीयं ब्रह्म'' - (छां., ६/२/१) और ''मृत्यो: स मृत्युमाप्नोतिय इह नानेव पश्यति'' (कठो., ३-४-१०) इस तरह इंगित करती हैं। श्रुतियों द्वारा उक्त ब्रह्म, ब्रह्मधाम के विषय में मात्र इंगित ही किया गया है।

उपरोक्त उभय पुरुषों के परिचय विषयक ज्ञानानुभव के लिए मैं, आध्यात्मिक ज्ञान प्रति मुमुक्षु आत्माओं को समाज के परमादरणीय धर्मप्रेमी श्री रणछोड़दासजी विरजी

(भाटापाड़ावाले) की अमूल्य देन (विराट का नक्शा) को इस ग्रन्थ का आधार बनाकर हृदयाङ्गम करने का आग्रह करता हूँ। इस प्रकार दोनों का मिलान कर समझने वाली मुमुक्षु आत्माओं को अवश्यमेव इस ग्रन्थ का हाथ लगना, पारस हाथ लगना-सा अनुभव होगा।

धर्मप्रेमी, अध्यात्म ज्ञान के जिज्ञासु-मुमुक्षुजनों! यह परा विद्या और ब्रह्म-विद्या आदि का ज्ञान आद्य सद्‌गुरु स्वरूप के हृदय का रहस्य पूर्ण दोहन है, जिसका विवेचन तारतम्य ज्ञानाधार महामति स्वरूप द्वारा किया गया है। उसी को यहाँ ''गागर में सागर'' के समान सरलता से सुलभ्य कराया गया है। चुंकि सर्व जनसाधारण में यह विचार-विवेक होगा कि मनुष्य जीवन की सार्थकता एवं पुरुषार्थता केवल षड्रस भोजन करने मात्र से नहीं होती। अत: विचार करें कि शास्त्रों के परिशीलन से जो दूर हैं, उन्हें मनन तो मिलने से रहा तथा गुरुदेव की सेवा तो स्वप्न में भी सम्भव नहीं, तो अध्यात्म तत्त्व किस प्रकार मिले?

अत: इस लघुग्रन्थ ''विराट विज्ञान दर्पण'' द्वारा मानचित्र (नक्शा) के आधार पर आध्यात्मिक ज्ञान का अनुभव हो तथा जहाँ तक हो सके, यह ग्रंथ समाज की क्षतिपूर्ति करने में अति उपयोगी बने, यही मेरी लघु आशा है। आगे चलकर समाज स्वयं अनुभव करेगा। यदि यह ग्रंथ समाज के लिए अनुकूल तथा उपयोगी सिद्ध होता है, तो लेखक इस कार्य को समाज की सेवा समझेगा और स्व-परिश्रम सफल मानेगा।

वस्तुत: इस ग्रन्थ को समाज के सामने प्रस्तुत करने और कराने में, सक्रीयतापूर्वक लगनशील होकर मुझे मद्द पहुँचाने में श्रीमती रश्मि चौबे और सुश्री गीतांजली चौबे का मुख्य हाथ है। इन दोनों बहनों के प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। पुन: "श्री प्राणनाथ महिला मण्डल, रजि., बोरीवली, मुंबई" ने तो रात-दिन अपनी मेहनत के साथ, इस ग्रंथ के प्रकाशन का बोझ अपने सिर पर लिया। अत: इस समाज सेवा कार्य का श्रेय "श्री प्राणनाथ महिला मण्डल, रजि., बोरीवली, मुंबई" को जाता है। इस विषय में 'लेखक' तो ग्रन्थ का जन्मदाता मात्र का भागीदार है। यसर्थ "श्री प्राणनाथ महिला मण्डल" का मैं अन्तर आत्मा से आभार प्रकट करते हुए उन्हें यह आशीर्वाद देता हूँ कि महामति श्री प्राणनाथ जी के धर्मक्षेत्र में वह यथा नाम तथा गुण:की तरह सदा-सर्वदा सक्रीय रहकर 'धर्मकार्य-समाज सेवा' करता रहे। श्रीराजजी उन्हें हर तरह की ताकत-शक्ति प्रदान करें।

अन्ततोगत्वा इस ग्रन्थ में अवश्यमेव कहीं न कहीं भूल-त्रुटियाँ जरूर छिपीं होंगी। अत: मैं समाज एवं पाठक वर्ग तथा सज्जनवृन्द से यह अनुरोध करता हूँ कि वे लक्ष्य बोध विषयक ज्ञान गरीमा की ओर देखें और उसी को अपनाएँ तथा भूल-त्रुटियों को सुधार कर पढ़ने की कृपा करें। इत्युक्तम -

- लेखक

।। अक्षरातीत श्रीकृष्ण * परमात्मने नमः ।।

"विराट विज्ञान दर्पण"

* मङ्गलाचरणम *

✣ आनन्दकन्दं प्रभुदेवचन्द्रं व्रजेशरूपेण पुरापिजातम्।
प्रविश्य प्राप्तं प्रियप्राणनाथं परेशपूर्णं सततं नमामि।।
ब्रह्म प्रियाजागरणाय जातः सर्वस्वपाता भवसिन्धुत्राता।
विज्ञानदाता निजधर्मधाता दीनैकबन्धो शरणंप्रपद्ये।।

✣ अन्वयार्थ - आनन्दकन्दम् = परात्पर सच्चिदानन्द परमात्मा के आनन्दस्वरूप; प्रभुदेवचन्द्रम् = प्रभुश्री देवचन्द्रजी (श्यामाजी अवतार हैं); व्रजेशरूपेण = व्रज के मालिक के रूप में (श्रीकृष्ण स्वरूप में); पुरापि = पहले व्रज में भी; जातम् = प्रगट हुए थे; प्रविश्य प्राप्तम् = प्रवेश हुए समय प्राप्त कर (३१३ मध्ये इन्द्रावती के दिल में वि. सं. १७१२ में); प्रियप्राणनाथम्= प्रिय शिष्य मेहेराज में (जो आगे जाकर सृष्टी में प्राणनाथ नाम से प्रसिद्ध हुए); परेशपूर्णम् = परात्पर पूर्ण

(१) कृष्ण एवाक्षरातीतः सच्चिदानन्दलक्षणः।
प्रियाभिः प्रार्थितः प्रेम्णा रेमे वृन्दावने विभुः।।

- (वृहद सदाशिव संहिता)।

अतः सच्चिदानन्द लक्षण पूर्ण हैं अक्षरातीत श्री कृष्ण!

(२) श्रीकृष्णश्चाक्षरातीत पुरूषोत्तम संज्ञितः।
रसरूपतयायस्तु श्रुतिभिः परिगीयते।।

- (पुराण संहिता, २३/२९)।

भावार्थ - श्री देवचन्द्रजी श्रीमन्निजानन्द स्वामी सच्चिदानन्द प्रभु परमात्मा के आनन्द अंशावतार थे। वे स्वरूप द्वापर में व्रज-मण्डलेश्वर श्री कृष्णजी के रूप में तथा वि.सं. १६३८ से

ब्रह्म की अर्धाङ्ग; स्वरूप होने पर; सततम् = निरंतर; नमामि = नमन करता हूँ।

- (इन सदगुरू स्वरूप ने ऐसा क्यों किया ? पहले व्रज में पुन: सदगुरू रूप में, फिर मेहेराज-इन्द्रावती में प्रवेश हुए)।

ब्रह्मप्रियाजागरणाय जात:= ब्रह्मप्रियाओं (ब्रह्मात्माओं) को जाग्रत करने के वास्ते विभिन्न स्वरूप में प्रगट होते आये हैं; सर्वस्वपाता = सर्वस्व प्राप्त करानेवाले (ब्रह्मप्रियाओं के धनी और धाम); भवसिन्धुत्राता = भवसागर से पार लगाने वाले (जिस मायावी दुस्तर सागर से शुकदेव जैसे भी न तर सके); विज्ञानदाता= विज्ञान (तारतम सम्बन्धी) दर्जे का ज्ञान देने वाले; निजधर्मधाता = अपनी आत्मा की पहचान कराकर स्वधर्म को धारण करानेवाले; दीनैकबन्धो = संसार में असहाय, दु:खी, घायल आत्माओं के एक मात्र सहायक होने से; शरणम् = ऐसे दयावन्त सदगुरू के चरणों में; प्रपद्ये = शरणापन्न रूपेण समर्पित होता हूँ।

पुन: अक्षरातीत श्रीकृष्ण ही पुरूषोत्तम परमात्मा हैं।

(३) कूटस्थ एव तद्धाम्नि कृष्णदर्शनलालस:।
नित्यं प्रयाति परम: प्रेमपूरित मानस:।।

- (पुराण संहिता)।

श्री देवचन्द्रजी के रूप में रहे तथा वि. सं. १७१२ के बाद श्री मेहेराज के माध्यम से श्री प्राणनाथजी के नाम से लोक प्रसिद्ध हुए।

इन स्वरूप ने ऐसे तीन रूप धारण, अपने धाम की ब्रह्मात्माओं को झूठे-खेल, मायावी नाटक की अनुभूति कराने तथा अपना आत्म-परिचय करा कर, उन्हें मूल गन्तव्य स्थान -मूल परम- निजधाम में लौटाने-ले जाने के वास्ते किया है।

अन्वयार्थ - कूटस्थ एव तद्धाम्नि = कूटस्थ सृष्टि कर्ता अक्षर ब्रह्म (पुरुष) उस परात्पर अक्षरातीत धाम में ही विराजमान; कृष्णदर्शनलालसः = श्रीकृष्ण अद्वैत ब्रह्म के दर्शन की उत्कट इच्छा लालसा लेकर; नित्यं प्रयाति परमः = नित्य प्रति जाते हैं, परमधाम में; प्रेमपूरित मानसः = प्रेमपूर्ण गद्गदायते हुए मन में।

भावार्थ - सृष्टिकर्ता कूटस्थ अक्षर ब्रह्म उस परात्पर अक्षरातीत धाम में ही विराजमान अद्वैत ब्रह्म श्रीकृष्ण के पास, प्रेमपूर्ण गदगद मन में दर्शन की लालसा लेकर रोज सुबह जाते हैं।

(४) नित्यं प्रयाति कूटस्थस्तल्लीला दर्शनोत्सुकः।
कृष्ण क्रीड़ा गृहाद् दूरे वर्तमानः कृतांजलिः।।
-(पुराण संहिता)।

अन्वथार्य - नित्यं प्रयाति कूटस्थः = दैनिक सुबह के प्रहर में जाते हैं, कूटस्थ अक्षर ब्रह्म; तल्लीला दर्शनोत्सुकः = एकाग्र मन से तल्लीन होकर दर्शनार्थ उत्सुकता पूर्ण दिल से; कृष्ण क्रीड़ा गृहाद् दूरे = कृष्ण लीला गृह (धाम) के आगे दूर ही; वर्तमानः कृतांजलिः = उपस्थित

जैसे -''हम आये हैं इतने काम, ब्रह्मसृष्टि लेने घर धाम'' वे नारायणी सृष्टि की सम्पूर्ण दु:खी घायल आत्माओं के एकमात्र आधारभूत हैं। अत: मैं उनके चरणों में समर्पित होता हूँ।

होकर अक्षरातीत पुरुष को हाथ जोड़ कर दर्शन कर वापस लौटते हैं।

भावार्थ - प्रेम में तल्लीन होकर दर्शन की उत्कट इच्छा उत्सुकता लेकर दैनिक अक्षरातीत धाम में जाते हैं और श्रीकृष्ण-लीला धाम के समक्ष दूर ही उपस्थित होकर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं एवं दर्शन करके वापस स्वधाम को लौट जाते हैं।

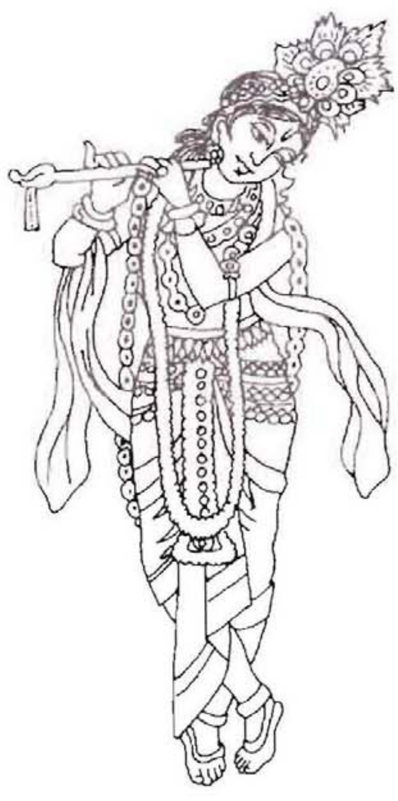

❖ विराट ज्ञान की कुंजी ❖

पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द
।।अक्षरातीत।।

सत् - पूर्ण है	चिद् और आनन्द से।
चित् - पूर्ण है	सत् और आनन्द से।
आनन्द - पूर्ण है	सत् और चित् से।
अक्षर ब्रह्म -	सत् की अनेकों कलाओं में से एक कला।
सत्स्वरूप -	अक्षर ब्रह्म का मनस्वरूप।

<u>सत्स्वरूप के चार स्थान</u>

महाकारण-	परमधाम और अक्षर धाम।
कारण -	परमधाम और अक्षर धाम।
सूक्ष्म -	परमधाम और अक्षर धाम।
स्थूल -	केवल ब्रह्म और सबलिक ब्रह्म (चिद्रूपाक्षर)।

<u>सबलिक ब्रह्म के चार स्थान</u>

महाकारण -	महारास।
कारण -	गोलोक।
सूक्ष्म -	चिदानन्द लहेरी।
स्थूल -	अव्याकृत ब्रह्म (सद्रूपाक्षर)

अव्याकृत (अक्षर) के चार स्थान

महाकारण - पुरुषलीला, गोलोक लीला और रास लीला।

कारण - अखण्ड सात शून्य, सात स्वर।

सूक्ष्म - काल-निरंजन शक्ति।

स्थूल - प्रणव ब्रह्म।

प्रणव (ब्रह्म) के पाँच स्थान

निर्मल चेतन - बिन्दु "O" मात्रा, स्वसंवेद, सदाशिव देवता तथा आकाश तत्त्व का सूक्ष्मतम रूप है।

महाकारण - अर्ध "◡" मात्रा, गायत्री शक्ति, अथर्ववेद, ईश्वर देवता तथा वायु तत्त्व का सूक्ष्मतम रूप है।

कारण - 'म' कार मात्रा, सामवेद, रूद्र देवता, आह्वनीय अग्नि तथा तेज तत्त्व का सूक्ष्मतम रूप है।

+

स्थूल - 'अ' कार मात्रा, ऋग्वेद, ब्रह्मा देवता, गार्हपत्याग्नि तथा पृथ्वी तत्त्व का सूक्ष्मतम रूप है।

यहाँ तक सच्चिदानन्द के अंशांश का विस्तार है। इसके आगे सच्चिदानन्द का उलटा प्रतिबिम्ब अर्थात् असत्, जड़, दुःख का विस्तार निराकार (नींद) के भीतर होकर है।

+ सूक्ष्म - 'उ' कार मात्रा, यजुर्वेद, विष्णु देवता, दक्षिणाग्नि तथा जल तत्त्व का सूक्ष्मतम रूप है।

❖ अब आगे अव्याकृत (अक्षर) के स्वप्न ❖

संसार का विस्तार :-

निराकार - (स्वप्न का ब्रह्म) मोह, अज्ञान, भ्रम, कर्म, काल, शून्य, नींद, निर्गुण, निरंजन।

अव्याकृत (अक्षर) का प्रतिबिम्ब मोहरूपी समुद्र में पड़ा। वह प्रतिबिम्ब निर्जीव अंडाकार होकर हजार वर्ष तक मोहरूपी जल में तैरता रहा। काल, कर्म, स्वभाव से उस निर्जीव अंडे में अव्याकृत का मन प्रवेश होकर सजीव हुआ और अंडे को फोड़कर बाहर आया। तब अपने स्थान और अपने आप को जानना चाहा। न जानने पर अपने को असत्-सा माना। तब नर (अव्याकृत) से पैदा नार (मोहरूपी जल) में अयन (घर) बनाया, तब नारायण *नाम हुआ। अब नारायण ने अपने को अकेला

---

* आपो नारा इति प्रोक्ता: आपो वै नरसूनव:।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायण: स्मृत:।।

-(मनुस्मृति, १-१०).।

अन्वयार्थ - नारा इति आप: प्रोक्ता: = नार शब्द का अर्थ जल है; वै आप: नरसूनव:= नर-अक्षर पुरुष से उत्पन्न होने के कारण निश्चय ही जल उसका पुत्र है; यदस्य पूर्वम् ता: अयनम्= आदिपुरुष का सर्वप्रथम जल में अयन (घर) हुआ; तेन नारायण: स्मृत:= इसी कार्य कारण से उसे नारायण (नर+नार+अयन)कहा गया।

भावार्थ - नार को ही जल कहा गया है। नर अक्षर पुरुष से उत्पन्न होने के कारण निश्चय ही जल, नर रूप अक्षर ब्रह्म का पुत्र हुआ। चुँकि आदिपुरुष (क्षरपुरुष) का प्रथम, जल में अयन (घर) हुआ, यसर्थ उसे नारायण कहा गया।

देखकर ''एकोऽहं बहुस्याम्'' मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ, ऐसी इच्छा की। तब इच्छाशक्ति पैदा हुई।

आदिनारायण के चार शरीर का विस्तार

४ शरीर	४ मूलनाम	४ अवस्था	४ अन्त:करण
महाकारण	नारायण	तुर्य	अहम्
कारण	इच्छाशक्ति	सुषुप्ति	चित्त
सूक्ष्म	मोहतत्त्व	स्वप्न	बुद्धि
स्थूल	अहंकार	जागृत	मन

अब बिंदुसृष्टि का बयान

त्रिगुण	कार्य	अवतार	रूप
सतगुण	पालन	विष्णु	चित्तरूप अहंकार
रजोगुण	उत्पत्ति	ब्रह्मा	बुद्धिरूप अहंकार
तमोगुण	संहार	महेश	मनरूप अहंकार

मनरूप तमोगुण अहंकार से शब्दतन्मात्र पैदा हुआ

पंचतन्मात्र	पाँच तत्त्व	देवता
शब्द	आकाश	सदाशिव
स्पर्श	वायु	ईश्वर
रूप	अग्नि	रूद्र
रस	जल	विष्णु
गंध	पृथ्वी	ब्रह्मा

पाँच तत्त्व के सतोगुण अंश से पाँच ज्ञानेद्रियाँ पैदा हुईं

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ	विषय	देवता
श्रवण	शब्द	दिक्पाल
त्वचा	स्पर्श	वायु
नेत्र	रूप	सूर्य
रसना	रस	वरूण
नासिका	गंध	अश्विनीकुमार

पाँच तत्त्व के रजोगुण अंश से पाँच कर्मेन्द्रियाँ पैदा हुईं

पाँच कर्मेन्द्रियाँ	विषय	देवता
वाक्	बोलना	अग्नि
पाणि	लेना-देना	इन्द्र
पाद	आना-जाना	विष्णु
उपस्थ	मूत्र त्याग	ब्रह्मा
पायु	मल त्याग	मृत्यु (गणेश)

पाँच तत्त्व के मिश्रित सतगुण अंश से चार अन्त:करण पैदा हुए

अन्त:करण	विषय	देवता
अहंकार	ममता	रूद्र
चित्त	चितवन	वासुदेव
बुद्धि	निश्चय	ब्रह्मा
मन	संकल्प-विकल्प	चंद्रमा

आत्मा के	स्वप्निक ब्रह्मांड के	पिण्ड (शरीर) के
नौ गुण	नौ गुण	नौ गुण
सत	मोह	असत्
चिद्	अज्ञान	जड़
आनन्द	भर्म	दुःख
अनन्त	कर्म	अन्त
अद्वैत	काल	द्वैत
साकार	शून्य	निराकार
प्रेम	नींद	मोह
जीवन	निर्गुण	मृत्यु
सुन्दर	निरंजन	कुरूप

चौदह लोक

सात स्वर्ग	सात पाताल
१. सत्यलोक	१. अतल
२. तपलोक	२. वितल
३. जनलोक	३. सुतल
४. महर्लोक	४. तलातल
५. स्वर्गलोक	५. महातल
६. भुवर्लोक	६. रसातल
७. भूर्लोक	७. पाताल

नोट - विराट के विज्ञानार्थ आत्म-सोपान का उक्त विषय अधिकाधिक उपयोगी है। अत: सबको हृदयङ्गम करना अति जरूरी है। आत्म-सोपान तारतम्य ज्ञान के समझ विषय कुंजी रूप में है।

❖ महाकारण ❖

इस संसार में विभिन्न वेद-शास्त्र, पुराणादि आध्यात्मिक धर्म ग्रन्थ हैं। शास्त्रों में इस विस्तृत संसार-विराट को विभिन्न नामों से पुकारा गया है, जैस-जगत, ब्रह्मांड, विराट, संसार, मोहसागर, भवसागर, दुनिया आदि।

इस स्वप्निक संसार की उत्पत्ति के पूर्व, ÷ इस संसार में अणु नहीं था, तो परमाणु भी नहीं था। तब स्वर्ग-नर्क, विष-अमृत, अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं था। न दिन था न रात, न जन्म न मृत्यु, न धर्म न अधर्म और न साकार न निराकार ही था। उस समय जड़ प्रकृति कुछ भी नहीं थी। उस समय केवल वह परमातिपरम सत्य अखण्ड मंडलाकार परलोक अक्षर और अक्षरातीत जाग्रत परलोक, जो ब्रह्म-लोक, ब्रह्म-धाम, ब्रह्म नाम से यत्र तत्र सर्वत्र वेदों से लेकर शास्त्र, गीता-भागवत, कुरान-पुराण, बाइबलादि सद्ग्रन्थों में वर्णित है तथा जो सर्वगुण सम्पन्न, सर्वातीत, परिपूर्ण हैं, वे ही एक मात्र थे।

÷"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्"

- (ऋग्वेद, ८-७-१७)

अन्वयार्थ - नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम् सृष्टि के पूर्व न सत् था, न असत् था; नासीद्रजः नो व्योमापरो यत् = न परमाणु थे, न सूक्ष्म आकाश ही था।

भावार्थ - सृष्टि के पूर्व न सत् था, न असत् था, न परमाणु थे, परम सूक्ष्म आकाश भी नहीं था।

वह परलोक-ब्रह्मधाम, वे अक्षर-अक्षरातीत पूर्णब्रह्म कैसे थे? यथा-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

- (वृहदारण्यक)।

जो स्वयं पूर्णात् पूर्ण हैं, जिनका धाम पूर्ण है, जो पूर्ण होने से उत्कृष्टतया सर्वोपरिपूर्ण है, जो कुटस्थ अक्षर ब्रह्म से भी पूर्ण, विशेष, निर्बाधित, निरातिशय, अनन्त, असीम, सर्वभावेन परिपूर्ण है, वह ब्रह्मानन्द रस का महासागर है। वहाँ कितने भी रस का उपयोग किया जाय, तब भी उसमें न्यूनता नहीं आती, पूर्णात् पूर्ण ही रहता है। ऐसे सर्वगुण संपन्न सच्चिदानन्द पूर्णानन्द अद्वैत परब्रह्म श्री राजजी तथा उनके मनस्वरूप कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के सिवाय कुछ भी नहीं था।

सर्वप्रथम यहाँ के कालातीत, परलोक अक्षरातीत ब्रह्मधाम में आज के दिन सुबह ब्रह्मांगनाओं को अपने मन स्वरूप कूटस्थ अक्षर ब्रह्म का मायावी खेल (नाटक) दिखाने के वास्ते, पुनः अक्षर ब्रह्म को भी अपनी गुह्यात् गुह्य ब्रह्मानन्द लीला का अनुभव कराने हेतु, अद्वैत ब्रह्म अक्षरातीत श्री राजजी के दिल में प्रेरणा हुई -

जो पेहेलें लई हकें दिल में, पीछे आई माहें नूर।
तिन पीछे हादी रुहन में, ए जो हुआ जहूर।।

- (खिलवत, प्र. ६/चौ. ४४)।

तत्पपश्चात् इस वर्तमान जगत की रचना करने की इच्छा अक्षर ब्रह्म कूटस्थ के दिल में उत्पन्न करा दी गई। जैसे -

अब खेल उपजे के कहूं कारन,
ये दोऊ इच्छा भई उत्पन्न।
बिना कारन कारज नहीं होए,
सो कहूँ याके कारन दोए।।

- (प्रकाश हिंदी, प्र. ३७/चौ. ६)।

इस विश्व की उत्पत्ति अक्षर ब्रह्म के मन से स्वप्नवत् हुई है। अत: यह विश्व मायावी तथा स्वप्नवत् है, उसी माया के अधीश्वर को (स्वप्न के शरीरवाले) क्षर-पुरुष कहते हैं। इस तरह शास्त्रों में क्षर-अक्षर तथा उत्तम अक्षरातीत तीन पुरुषों का वर्णन मिलता है। इन तीनों में अक्षर तथा अक्षरातीत पूर्णब्रह्म कूटस्थ अविनाशी हैं और अक्षर का स्वप्न संसार के अधीश्वर क्षर-पुरुष-हिरण्यमय गर्भ नाशवान स्वप्नवत् हैं। उन नश्वर माया से परे कूटस्थ अविनाशी अद्वैत पूर्णब्रह्म परमात्मा (उत्तम पुरुष) को जानने-समझने से पहले; जब तक उनकी माया तथा माया से उत्पन्न इस जगत के मायावी कार्य-कलाप के कर्ता-कर्म ब्रह्म (देवताओं) की व्यवस्था समझ में नहीं आती, तब तक उन अद्वैत परमात्मा का वास्तविक स्वरूप और उनका यथातथ्य महत्त्व-महात्म्य पूर्ण रूप से जाना नहीं जाता।

इस ग्रन्थ में मुख्यत: शास्त्रों से लक्षित तीन पुरुषों का सूक्ष्म रुपेण दिग्दर्शन कराया गया है। सर्वप्रथम स्वप्न द्रष्टा कूटस्थ अक्षर पुरुष के स्वप्निक स्वरूप हिरण्य-गर्भ, क्षर-पुरुष का

वर्णन किया गया है, जिसके अन्तर्गत, आदिनारायण के चतुष्पाद-स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण में स्थूल पादान्तर्गत माया से उत्पन्न चौदहों लोकों का वर्णन पाताल से लेकर क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा महाशून्य तक का वर्णन सोपान-सा किया गया है। तत्पश्चात् अविनाशी कूटस्थ अक्षर ब्रह्म तथा अक्षरातीत उत्तम पुरुष परमात्मा के धाम का सूक्ष्म वर्णन सोपानशः इंगित किया जायेगा।

इस गोलावृत्त विराट के अन्दर, नीचे से ऊपर तक भिन्न भिन्न नाम वाले चौदह लोक हैं। उन चौदह लोकों के समूह का नाम ही विराट है। वेद-शास्त्रों में इस विराट के पुरुष रूप की कल्पना की गई है। चौहद लोकों में इसके यथा योग्य भिन्न भिन्न अंगों की कल्पना की गई है। जैसे विराट पुरुष के कमर में अतल, जाँघों में वितल, घुटनों में सुतल, पिंडुरियों में तलातल, गुल्फा (एड़ी के ऊपर की गाँठ) में महातल, पैरों में रसातल और पादतल में पाताल है।

पुनः इसी प्रकार कमर से ऊपर उदर में भूर्लोक, नाभि में भुवर्लोक, हृदय में स्वर्गलोक, छाती में महर्लोक, कंठ में जनलोक, ओष्ठों में तपलोक तथा मस्तक में सतलोक का वर्णन है (भा. २/५/३६)। इन चौदह लोकों के मध्य के लोक को मृत्युलोक अथवा भूर्लोक कहते हैं। वर्तमान में जहाँ पर हम सब बैठे हैं, यहाँ से नीचे सात पाताल लोक हैं और मृत्युलोक समेत सात लोक ऊपर हैं।

इस प्रकार आदिनारायण के स्थूल भाग में चौदह लोक तराजू

के पलड़े की भाँति नीचे-ऊपर स्थित हैं। नीचे के सात लोकों को बिल-स्वर्ग भी कहते है। सातों पातालों में दैत्य-दानव तथा सर्प-नागों की बस्तियाँ हैं। यदुप्रान्त पाताल से लेकर ऊपर के लोकों का क्रमश: वर्णन किया जाता है।

अत: निम्नोक्त चौपाई द्वारा इंगित लक्ष्य में पहुँचना है। जैसे-

सात लोक तले जिमी के, मृतलोक है तिन पर।
इंद्र रूद्र ब्रह्मा बीचमें, ऊपर विस्नु बैकुण्ठ घर।।

निराकार बैकुंठ पर, तिन पर अक्षर ब्रह्म।
अक्षरातीत ब्रह्म तिन पर, यों कहे ईसे का इलम।।

- (खुलासा, प्र. १२/चौ. २१,२२)।

अर्थ - हिन्दु जगत के मूल धर्मग्रन्थ -वेद में इस संसार में सात लोक नीचे बताए गए हैं। इन सात लोकों के ऊपर हमारा मृत्युलोक है। इसके ऊपर छ: लोक हैं, जिनके बीच में इन्द्र, रूद्र (शिव) एवं ब्रह्माजी इन देवताओं के लोक आते हैं। इन सबके ऊपर चौदह लोक की राजधानी-सतलोक में भगवान विष्णु का वैकुंठधाम अवस्थित है।

वैकुंठ से परे शून्य, निराकार और निरंजन पाँचवी क्षर समष्टि- कही जाने वाली भूमिकाएँ है। इसके परे कूटस्थ अविनाशी अक्षर ब्रह्म है और उससे भी परे अक्षरातीत सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा हैं। यह तारतम ज्ञान ईसा- श्री देवचन्द्रजी प्रदत्त है, जिन्होंने उत्तरोत्तर श्रेष्ठ क्रम निर्धारित किया है। वहीं पर हमें पहुँचना है।

✤ प्रथम-तरङ्ग (क्षर-पुरुष) ✤

(विराट पुरुष चौदह लोक)

१. पाताल लोक - चौदह लोक में यह लोक सबसे नीचे का लोक है। इसके भी दो भाग हैं। नीचे के भाग में मोहजल के अंशरूप पानी का एक विस्तृत भाग है।

ब्रह्माण्डरूपी अंडे के गर्भ में होने से इसको गर्भोदक* समुद्र भी कहते हैं। इस समुद्र में बहुत विशाल लम्बा-चौड़ा विस्तारवाला एक कच्छप (कछुवा) है, जिसकी पीठ पर चौदह लोकों के सम्पूर्ण भार को अपने सिर पर धारण किये हुए सर्पों के राजा शेषनाग कमलाकार आसन में विराजमान हैं।

शेषनाग की शय्या (पलंग) कल्पित करके उस पर श्री महाविष्णु-आदिनारायण के संकर्षण नामक व्यूह (अहंकार) के स्वरूप श्री नारायणजी शयन कर रहे हैं। उनको ''सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्'' - (श्वेताश्वत्रोपनिषद, अ. ३-१४) कहते हैं। उनकी शेषनारायण संज्ञा भी है। श्री लक्ष्मीजी उनकी पादसेवा कर रहीं हैं। इन्हीं शेषनारायण की नाभि प्रदेश से एक कमल-नाल निकल कर

* गर्भोदक - मोहजल - मोहसागर को मोहतत्त्व (अज्ञान-भूलन, पूर्व विस्मृति) भी कहते हैं। जिसमें से हिरण्य गर्भ-महाविष्णु-आदिनारायण पैदा हुए हैं और जिस मोहजल में वे हजार वर्ष तरते रहे, उसी मोहजल का अंश रूप यह गर्भोदक (गर्भः + उदक = गर्भोदक) समुद्र कहा जाता है।

सुदूर ऊपर को (डेढ़ लाख योजन ❊ पुष्कर द्वीप में) जा निकला है, उसी में से सृष्टि के आद्य-त्रिदेवा ब्रह्मा, विष्णु और महेश (शंकर) की क्रमशः उत्पत्ति हुई है।

नारायणजी के 'सोऽहं-सोऽहं' श्वास प्रगति से चारों वेद- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद स्थूल रूप से प्रगट हुए हैं।

शेषशायी नारायणजी घोर नींद में खर्राटे ले रहे हैं। जैसे 'नारायण नींद में, कोई देखो संत विचार'- उनकी घोर निद्रावस्था की श्वास-प्रगति में 'सोऽहं-सोऽहं' के उच्चारण में जिस 'ॐ' का जाप चलता है, उसी से चारों वेदों की उत्पत्ति हुई।

श्री नारायणजी के दायीं ओर दक्षिण दिशा में उत्तरोत्तर एक से एक अधिकाधिक अति दुःखप्रद नरकों के चौरासी कुण्डों का व्यवस्थित स्थान है। जो मनुष्य वेदों के विधि-निषेद्ध विधान परिलंघन करके उदण्डवत् निषिद्ध कर्म करता है, वह इन्हीं नरक कुण्डों में जा दण्ड भोगता है।

शेषनारायणजी से तीस सहस्त्र योजन ऊपर सर्पों की बस्ती है। यह स्थान सर्पों के अनुकूल अनेक प्रकार के खाद्य-पदार्थादि भोग-विलास के पदार्थों से भरा हुआ है। सर्प योनी वालों को किसी भी प्रकार का दुःख कष्ट मिले, ऐसी असुविधा यहाँ नहीं

❊ (दो माइल - कि.मी. = १ कोस, ४ कोस = १ योजन (एक योजन = आठ कि.मी.)।

है। सब ओर से सुखदायी-आनन्दप्रद है। यहाँ पर मृत्युलोक की तरह चंद्र-सूर्यादि का प्रकाश नहीं है, परन्तु मणियों के स्वत:प्रकाश से यह लोक दीपायमान है। इस पाताल लोक में सर्पों की आबादी है। यहाँ का राजा भी वासुकि-शंख-कुलीक नामक सर्प ही है। इस लोक की लम्बाई चौड़ाई सौ योजन और ऊँचाई दस सहस्र योजन है।

२. रसातल लोक - यह रसातल लोक पाताल लोक से दस सहस्र योजन ऊपर है। रसातल में राक्षसों की आबादी है। यहाँ निवात-कवच नाम के राक्षस राज करते हैं। यह लोक राक्षस-योनि के अनुकूल खाद्य-पदार्थों से भरापूरा और विभिन्न सुख-विलास की सामग्रियों से सम्पन्न है। इस लोक की भी लम्बाई-चौड़ाई सौ योजन और ऊँचाई उस सहस्र योजन है तथा प्रकाश मणियों का ही है।

३. महातल लोक - यह लोक रसातल से दस सहस्र योजन ऊपर स्थित है। यहाँ पर नाग-सर्पों की आबादी है और सर्प ही यहाँ का राजा भी है। यहाँ के राजा का नाम कुहक-तक्षक है। यह लोक नागों-सर्पों के अनुकूल सर्व भोग्य पदार्थों से भरपूर है तथा यहाँ अनेक प्रकार के सुख विलास हैं। यह लोक भी लंबाई चौड़ाई में सौ योजन ही है और इसकी भी ऊँचाई दस सहस्र योजन ही है। यह लोक भी मणियों के प्रकाश से झलझलाकार है।

४. तलातल लोक - यह लोक महातल से दस सहस्र योजन

ऊपर है। यहाँ भी राक्षसों का निवास है। यहाँ राक्षस राज मयासुर राज्य करते हैं। यहाँ पर अपार सुख शान्ति है और मणियों का प्रकाश है। राजा मयासुर, राजा बलि के आधिपत्य में राज करता है।

५. सुतल लोक - सुतल लोक तलातल लोक से दस सहस्र योजन ऊपर है। यहाँ पर दैत्य-दानवों की आबादी है। यहीं पर भक्त प्रल्हाद के पौत्र, विरोजन के पुत्र राजा बलि राजधानी बनाकर निवास करते हैं। राजा बलि के दरबार में ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी यथाक्रम चार-चार मास द्वार पर आकर भक्त राजा बलि को दर्शन देते हैं। यहाँ किसी भी प्रकार के आधि-व्याधी और राग-द्वेष नहीं सताते तथा यहाँ विभिन्न प्रकार के सुख भोग प्राप्त हैं। लम्बाई-चौड़ाई में सौ योजन ही है तथा प्रकाश भी मणियों का ही है।

६. <u>वितल लोक</u> - वितल लोक भी नीचे के सुतल लोक से दस सहस्र योजन ऊपर है। यहाँ भी राक्षसों-दानवों की ही बस्ती है। हाटकेश्वर महादेवजी अपनी भवानी सहित यहाँ विराजमान हैं। वितल लोक भी मणियों के प्रकाश से प्रकाशित और अपार सुख विलास की अनुकूल सामग्रियों से भरापूरा है। यहीं पर हाटक नामक अमृत के रस की नदी बहते रहती है।

७. <u>अतल लोक</u> - यह वितल लोक से दस सहस्र योजन ऊपर है। यहाँ तलातल लोक के राजा मयासुर राक्षस के पुत्र

बलकासुर का आधिपत्य है। यह असुर राज बलका अति चतुर और मायावी है। यह छियानब्बे प्रकार की माया से सम्पन्न है। इसने अपनी माया द्वारा नाना प्रकार के वनोद्यान, महल-मंदिरादि रचकर इन्द्र के स्वर्ग को भी तुच्छ कर दिया है। यह माया द्वारा हाटक नामक अमृत का रस बनाता है और सभी दैत्य-दानवों को पान कराकर उन्हें शक्ति प्रदान करता है।

इस प्रकार ये सातों पाताल लोक स्वर्ग से भी अधिक ऐश्वर्यशाली तथा हर तरह से सम्पन्न हैं। नीचे के सात लोकों को बिल-स्वर्ग और भूविवर भी कहते हैं, क्योंकि ये सभी लोक पृथ्वी के भीतर बिल सदृश छोटे आकार में हैं। इनका विस्तार मृत्युलोक तथा स्वर्ग की भाँती महान् नहीं है। किन्तु ये सौ-सौ योजन के लम्बे चौड़े हैं। ऊँचाई में दस-दस सहस्र योजन एक दूसरे से ऊपर-नीचे स्थित हैं। ये सभी ऋतुओं में सुखप्रद और सर्व सुखों से पूर्ण हैं। अतः 'अधोगच्छन्ति तामसाः' - तमोगुण की प्रधानता वाले मनुष्य राक्षस और सर्पों की योनियों में होकर सात पाताल लोक में सुख भोगते हैं। इति -

"सात पाताल लोकों से ऊपर-"

मृत्युलोक अथवा भूर्लोक :-

यह लोक विराट पुरुष का उदर (पेट)है। जिस प्रकार हमारे पेट द्वारा शरीर के सर्वांग का पालन -पोषण होता है; उसी प्रकार इस लोक के द्वारा विराट के सर्वांग (अन्य १३ लोकों का) का पोषण होता है। विराट के सब अंगों में से यही

अंग (मृत्युलोक) सर्वोत्तम तथा अति उपयोगी है। बड़े-बड़े देवताओं को भी यह लोक अत्यन्त दुर्लभ है। वे यहाँ के वास्तविक गौरव को देखकर स्वर्गादि समस्त अपवर्ग मोक्ष पदों के सुखों को तुच्छ मानते हुए यहाँ के मनुष्यों को धन्यवाद देते, धन्य-धन्य कहते हैं।

यह विराट का उदररूप मृत्युलोक आठों पर्वतों से मर्यादित पचास करोड़ योजन ❋ विस्तार वाला, जो देवयुग में एक ही शासन में था, परन्तु मानव युग के लिए यह सम्भव नहीं रहा। चुँकि देवयुग की अप्रतिहित (अथाह) शक्ति, अपूर्व सामर्थ्य और अन्य अपेक्षित - (इच्छित) बातें मानव युग में यथावत् नहीं रह सकती थीं; इसलिए देवयुग के शासकों में अन्तिम

❋ विराट पुरुष के उदररूप मृत्युलोक पचास करोड़ योजन विस्तार वाला है। जैसे -

तवक चौदह इण्ड में, जिमी जोजन कोट पचास।
पहाड़ कुली अष्ट जोजन, लाख चौसठ वास।।

- (कलश हि., प्र. १७/चौ. ३४)

इस मृत्युलोक में सात द्वीप सात समुद्र फिरे हैं। इनकी मर्यादा निम्नोक्त बड़े-बड़े आठ पर्वतों ने बाँधी है। जैसे - नील, श्वेत, श्रृंगवान, निषद, हेमकूट, हिमालय, गन्धमाधन और माल्यवान। पुनः सात द्वीपों में अन्तिम पुष्कर द्वीप की चौड़ाई सौसठ लाख योजन है। वहाँ तक यानि सातों द्वीपों में पशु-प्राणी तथा मनुष्यों की आबादी है।

शासक महाराजा प्रियव्रत ❁ ने इस मृत्युलोक को सात द्वीपों में निम्नोक्त प्रकार विभक्त करके अपने सात पुत्रों में बाँट दिया और कहा कि - तुम सात पुत्र एक-एक द्वीप को संभालो तथा संचालित करो। इनका एकछत्र शासन करना असम्भव है।

अत: महाराजा प्रियव्रत की सन्तानों में सात पुत्र और एक पुत्री थी। सात पुत्रों को तो उन्होंने सात द्वीपों में से एक-एक द्वीप का अधिपति बना दिया। एक मात्र पुत्री ऊर्जस्वती की शादी भृगुपुत्र, दैत्यों (राक्षसों) के गुरू शुक्राचार्य के साथ कर दी। अत: सात द्वीप में से -

१) जम्बूद्वीप - यह द्वीप अन्य द्वीपों से महत्त्वपूर्ण, सबसे छोटा और मध्य का द्वीप है। इस द्वीप में एक अति बड़ा जामुन का वृक्ष था, उसी वृक्ष की विशेषता के कारण द्वीप का नाम ही जम्बूद्वीप पड़ा. इस द्वीप के शासक अधिपति प्रियव्रत पुत्र महाराजा ''अग्निध्र'' थे।

२) प्लक्षद्वीप - सुवर्णमय पाकर वृक्ष के कारण ही इस द्वीप का नाम प्लक्षद्वीप पड़ा। इस वृक्ष में सात जिह्वाओं वाले अग्निदेव रहते हैं। इस द्वीप के संचालक अधिपति राजा प्रियव्रत पुत्र महाराजा ''इध्मजिह्वा'' थे।

३) शाल्मलीद्वीप - इस द्वीप में एक बड़ा भारी सेमर का

❁ संसार प्रसिद्ध भक्तराज 'ध्रुव' के पिता थे महाराजा उत्तानपाद; उंनके सहोदर भाई महाराजा प्रियव्रत थे।

झाड़ है। इस झाड़ में पक्षी राज गरूड़ निवास करते हैं। इस द्वीप के अधिपति-संचालक प्रियव्रत पुत्र महाराजा ''यज्ञबाहु'' थे।

४) कुशद्वीप - इस द्वीप में भगवान (विष्णु) द्वारा रचा हुआ एक विशाल कुश नामक झाड़ है। यह वृक्ष अग्नि की शिखाओं की तरह प्रज्वलित है। इसके कारण द्वीप की संज्ञा भी कुशद्वीप हुई। इस द्वीप के संचालक अधिपति प्रियव्रत पुत्र महाराजा 'हिरण्यरेता' नामक शासक थे। इस द्वीप की चौड़ाई आठ लाख योजन है।

५) क्रौंचद्वीप - इस द्वीप में बड़ा भारी अति विशाल क्रौंच नामक पर्वत है। उसी के कारण इस द्वीप का नाम क्रौंच द्वीप रखा गया। यह पर्वत अग्नि की भाँति दीपायमान है। इस द्वीप के संचालक अधिपति प्रियव्रत पुत्र महाराजा ''घृतपृष्ठ'' थे। इस द्वीप की चौड़ाई सोलह लाख योजन है।

६) शाकद्वीप - इस द्वीप की चौड़ाई बत्तीस लाख योजन है। यहाँ के संचालक अधिपति महाराजा प्रियव्रत पुत्र महाराज ''मेघातिथि'' थे। इस द्वीप में विशाल विचित्र गुण वाला 'शाक' नामक वृक्ष है। यह वृक्ष अति मनमोहक और सुगन्धदार है। इस वृक्ष की सुगंध से सारा द्वीप महकता रहता है। इस झाड़ के गुण भी ''यथा नाम तथा गुण'' युक्त होने से द्वीप का नाम भी शाकद्वीप हुआ।

७) पुष्करद्वीप - यह द्वीप सात द्वीपों में सबसे बड़ा और दूर

का द्वीप है। इस द्वीप की चौड़ाई चौंसठ लाख योजन है। इस द्वीप में अग्नि शिखाओं के समान सुवर्णमय लाखों पंखुड़ियों से युक्त पुष्कर (कमल) है। यह कमल-नाल पाताल स्थित शेषशायी भगवान के नाभि प्रदेश से ड़ेढ लाख योजन ऊपर आकर यहाँ खिला है, जिसको ब्रह्माजी का आसन मानते हैं। इसी कमल के कारण इस द्वीप का नाम 'पुष्कर' द्वीप रखा गया है। इस द्वीप के अधिपति-शासक प्रियव्रत पुत्र महाराजा ''वीतिहोत्र'' थे।

उक्त प्रकार बाँट देने पर भी बहुत काल तक उनके पुत्रों के अधीन रहे। किन्तु अन्य सभी द्वीपों के वे दिव्य गुण और दिव्य साधन जो देवों के अनुकूल थे, समस्त धीरे-धीरे देवों के साथ ही चले गये। इन बातों का वर्णन भागवत के पंचम स्कन्ध में बड़े विस्तार के साथ किया है।

इस मृत्युलोक के मध्य में जम्बू द्वीप है। फिर उसको घेर कर लवण समुद्र है। उसके बाद प्लक्ष द्वीप है, उसको घेर कर इक्षु का समुद्र है। इक्षु समुद्र के बाद शाल्मली नामक द्वीप है, उसको घेर कर सुरा का समुद्र है। उसके बाद कुश द्वीप है, उसको घेर कर घृत का समुद्र है। उसके बाद क्रौंच नामक द्वीप है, उसको घेर कर दधि का समुद्र है। उसके बाद शाक द्वीप है, उसको घेर कर क्षीर का समुद्र है। उसके बाद पुष्कर द्वीप है, उसको घेर कर मीठे जल का समुद्र फिरा है। उसके

बाद सोने की भूमि ❁ आती है। सोने की भूमि के बाद लोकालोक पर्वत आता है, जिसकी चौड़ाई साढ़े बारह करोड़ योजन है।

उपरोक्त सातों द्वीप और सातों समुद्र एक दुसरे की अपेक्षा द्विगुना होते चले गये हैं, जैसे-जैसे द्वीपों का विस्तार दो गुना होता चला गया, उसी प्रकार समुद्र भी एक दूसरे के दुगुने होते चले गये हैं। इन सबके मध्य भाग में जम्बूद्वीप स्थित है।

जम्बूद्वीप को घेर कर जो सात समुद्र और छः द्वीप आये हैं, वे सब ब्रह्माण्ड के अंड-कटाह की तरह गोलावृत चारों ओर से ऊपर की ओर दो-दो गुना बढ़ते चले गये हैं तथा स्वर्ग के साथ जा मिले हैं। यह सब विस्तार मृत्युलोक (भूलोक) में ही गिना जाता है।

जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। इसके मध्य में सुमेरू नामक सुवर्ण का पर्वत खड़ा है, जो एक लक्ष योजन ऊँचा है। यह सोलह सहस्त्र योजन पृथ्वी के अन्दर प्रविष्ट है और चौरासी सहस्त्र योजन पृथ्वी के ऊपर है, जिसको पाँच भाग में विभक्त किया गया है। जैसे - सर्वप्रथम बीस सहस्र योजन पत्थर-मिट्टी का है, उसके ऊपर बीस सहस्र योजन लोहे का, पुनः उसके ऊपर बीस सहस्र योजन तांबे का, उसके

❁ उक्त सुवर्णमयी भूमि (सोनानी भूमि) दर्पण के सदृश अति स्वच्छ है। इसमें गिरी हुई कोई भी वस्तु फिर नहीं मिलती, अदृश्य हो जाती है। इसलिए वहाँ देवताओं के अतिरिक्त और कोई प्राणी नहीं रहता।

ऊपर बीस सहस्र योजन चाँदी का और सबसे ऊपरी बीस सहस्र योजन सोने का है।

इस सुमेरू पर्वत के चारों ओर नौ खण्ड हैं। इन नवों खण्डों में भगवान विष्णु के नौ अवतारों की अलग-अलग प्रतिष्ठा है। जैसे दक्षिण दिशा से उत्तर ध्रुव की ओर जाते क्रमशः १ - किंपुरुष वर्ष में भगवान के सिता-राम अवतार की २ - भारतवर्ष में नर-नारायण अवतार की ३ - हरिवर्ष में नरसिंह अवतार की ४ - इलावृत्त * खण्ड में शिव-पार्वती की ५ - हिरण्य वर्ष में मत्स्यावतार की ६ - रम्यक वर्ष में कच्छप अवतार की ७ - कुरू वर्ष में वराह अवतार की ८ - पूर्व दिशा के भद्राश्व खण्ड में ह्यग्रीव अवतार की और ९ - पश्चिम दिशा के केतुमाल खण्ड में कामदेव के अवतार की प्रतिष्ठा है। जिस भारत वर्ष में हम बैठे हैं, यह तो उस वक्त के भारत खण्ड का केवल नौंवा भाग है और प्रत्येक खण्ड की मर्यादा महान पर्वतों-नदियों से बँधी है।

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत नौ खण्ड लिखे जा चुके हैं। उनमें से भारत वर्ष में जो नौवाँ खण्ड है, वह भी पुनः नौ खण्डों में निम्नोक्त प्रकार से विभक्त था। जैसे - १ - इन्द्र द्वीप,

* इलावृत्त खण्ड की लम्बाई चौड़ाई अठारह सहस्र योजन है। इस खण्ड के क्षेत्र में यह गुण है कि यहाँ किसी भी पुरुष के चरण पड़ते ही वह स्त्री बन जाता है। बाद में उसे पार्वती की सहेली बनकर रहना पड़ता है, क्योंकि उस खण्ड में शिवजी ही पुरुष स्वरूप में हैं। उनके अलावा अन्य कोई नहीं रह सकते हैं।

२- कशेरुमान ३-ताम्रवर्ण ४-गभस्तिमान ५-नागद्वीप ६-सौम्यद्वीप ७-गान्धर्वद्वीप ८-वारुण ९-हिन्दुस्तान।

अत: त्रिलोकीनाथ (विष्णु भगवान) ने तीनों (पाताल, स्वर्ग, मृत्युलोक) लोकों में मृत्युलोक और मृत्युलोक में जम्बूद्वीप एवं जम्बूद्वीप में भी भारतवर्ष को उत्तरोत्तर विशेष महत्त्वपूर्ण तीर्थ बनाया है। इस भारतवर्ष को अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण गौरव प्राप्त होने के मुख्यत: कुल सोलह कारण हैं। जैसे - १ - भारत वर्ष कर्मभूमि होने के कारण इसका गौरव सबसे अधिक है २-त्रिलोकीनाथ के हर चतुर्यगी के चौबीस अवतार यहीं पर होने से ३ - संसार प्रसिद्ध अट्ठासी हजार ऋषि-महर्षि हुए, वे भी यहीं पर हुए ४ - लोक प्रख्यात बड़े-बड़े भक्त, ध्रुव,प्रल्हाद तथा नारद भी यहीं आये ५ - इसी खण्ड में स्वर्ग के -से सुखों को देने वाले तथा मानसिक विचारों को पवित्र करने वाले साढ़े तीन करोड़ तीर्थ स्थान * होने से ६ - परा-अपरा ज्ञान का तत्त्वबोध = जैसे :- अपरा विद्या-वेद, शास्त्र-पुराण उपनिषदादिका

---

* सार्धत्रिकोटि तीर्थेषु स्नानपुण्यप्रभावत:।
प्रादुर्भूतो मनसि मे विचार: सोऽयमीदृश:।।

\- (महोपनिषद्)

अन्वयार्थ - सार्धत्रिकोटि तीर्थेषु स्नानपुण्यप्रभावत:= साढ़े तीन करोड़ प्रभावशाली पुण्यों को प्राप्त कराने वाले स्नान करने की तीर्थरूप नदियाँ; प्रादुर्भूतो मनसि मे विचार: सोऽयमीदृश:= प्रगट हैं, वे अनेकों अपवित्र विचारों को पवित्र करनेवाले हैं।

प्रचार व तत्त्वबोध तथा पराविद्या-ब्रह्मज्ञान द्वारा स्वात्म तत्त्वबोध, ब्रह्मतत्त्व बोध भी यहीं पर सम्भव होने के कारण ७ - अनेकों सन्तात्माओं महापुरुषों ने इसी भूमि को अपना-अपना तीर्थ बनाकर अपने चरण स्पर्श द्वारा इसको गौरव प्रदान करने से ८ - कर्म, उपासना, ज्ञान इन तीन कांडों का यथायोग्य अनुशरण भी इसी आस्तिक प्रदेश में होने के कारण ९ - धर्माधर्म एवं सद्सत-विवेक के लिए तो यह एक मात्र तपोभूमि एवं ज्ञानभूमि सिद्ध होने से १० - इसी खण्ड में त्रिदेवों की तीन पुरियाँ भी हैं। जैसे :- ब्रह्मा की प्रयाग, विष्णु की मथुरा और शिव की काशी। यहीं पर ये देव अपनी-अपनी विशेष सत्ता से निवास करते हैं। ११ - इस खण्ड की सब से मुख्यत: महत्त्व की बात तो यह है कि आत्मसाधन का मुख्य साधनरूप परमात्मा की जैसी सेवा-भाव-भक्ति इस खण्ड में बन पाती है, वैसी अन्यत्र कदापि नहीं बन पाती। १२ - इस खण्ड में ऐसा शुभाशुभ काम्य अथवा 'त्रिधा-भक्ति'❁ का सुअवसर मनुष्य को प्राप्त है, जिसके माध्यम से साधक पुरुष पाताल से लेकर श्री अक्षरातीत परमधाम

भावार्थ - भरतखण्ड में मनुष्य के मन को पवित्र करने वाले तथा स्वर्ग जैसे सुखों में पहुँचाने वाली साढ़े तीन करोड़ तीर्थरूप नदियाँ प्रगट हैं। ये नदियाँ पतित् में पतित् और अपवित्रों में अपवित्र विचारों को बदलाकर पवित्र-पावन करानेवालीं हैं।

❁ त्रिधा-भक्ति :- सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति और परा प्रेमलक्षणा भक्ति। जैसे -

तक के लोकों का सुख प्राप्त कर सकते हैं।

१३ - इसी खण्ड में निम्नोक्त चार पदार्थ भी प्राप्त हैं।

भक्तिरेका त्रिधा प्रोक्ता, सगुणा निर्गुणा परा।
सगुणा नवधाख्याता, निर्गुणाष्टविधा स्मृता।।
दशलक्षण संयुक्ता, पराख्या प्रेमलक्षणा।

- (नारदभक्तिसुत्र)।

अन्वयार्थ - भक्तिः = भक्ति (भक्तों को अपना इष्ट प्राप्त करने का साधन है); एका त्रिधा = वास्तव में भक्ति एक ही है। एक भक्ति के तीन प्रकार के साधन हैं; प्रोक्ता = कहा गया है 'भक्ति' को जैसे; सगुणा निर्गुणा परा = सगुण भक्ति (साकार इष्ट की), निर्गुण भक्ति (निराकार इष्ट की), परा भक्ति (शुद्ध साकार इष्ट की); सगुणा नवधाख्याता = सगुण भक्ति को नवधा कहते हैं। इसके नौ अंग, नौ प्रकार हैं, निर्गुणाष्टविधा स्मृता = निर्गुण भक्ति को अष्टांग योग भक्ति कहते हैं, इसके आठ अंग और छः उपाङ्ग हैं; दशलक्षण संयुक्ता = दस लक्षण से युक्त जो है, उसे; पराख्या प्रेमलक्षणा = परा प्रेम लक्षणा भक्ति कहते हैं।

भावार्थ - साधक पुरुषों के साध्य तत्त्व प्राप्त करने का साधन है 'भक्ति'। वास्तव में 'भक्ति' एक ही है। एक ही भक्ति को तीन प्रकार से साधते हैं। जैसे - सगुणा भक्ति साकार इष्ट (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की, निर्गुणा भक्ति निराकार इष्ट-ब्रह्म (आदिनारायण के सूक्ष्म मोहतत्त्व-निराकार) की, परा भक्ति शुद्ध साकार इष्ट (अक्षर - अक्षरातीत ब्रह्म) की, अतः 'सगुणा नवधाख्याता' - सगुण भक्ति को नवधा - भक्ति कहते हैं, उसमें नौ अंग हैं। यथा -

जैसा कि - (१) उत्तम सुरदुर्लभ मानव तन (२) वह तन भी भारत वर्ष (खण्ड) के जन्म (३) उस में भी २८ वाँ कलियुग का मानवतावतार (४) तीनों प्राप्त पदार्थों को सार्थक बनानेवाला

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं, सख्यात्मनिवेदनम्।।

- (भा., ७-५-२३)।

नवधा भक्ति के प्रसिद्ध भक्तों में - श्रवण भक्ति राजा परिक्षित ने, कीर्तन भक्ति शुकदेवजी ने, स्मरण भक्ति प्रल्हाद ने, पादसेवन भक्ति श्रीलक्ष्मीजी ने, अर्चन भक्ति पृथु राजा ने, वंदना भक्ति अक्रुरजी ने, दास भक्ति हनुमानजी ने, सखा भक्ति अर्जुन ने, तो आत्म-निवेदन भक्ति बलि राजा ने किया। उसी प्रकार ''निर्गुणाष्टविधा स्मृता'' निर्गुण भक्ति को अष्टांग योग भक्ति कहते हैं, इसके आठ अंग हैं। जैसे -

यमनियमासन प्राणायम प्रत्याहार
धारणाध्यान समाधयोऽष्टाङ्गानि

- (पाताञ्जल योगशास्त्र)।

अत: - यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

''दशलक्षण संयुक्ता, पराख्या प्रेमलक्षणा''-

अर्थ - दस लक्षण से युक्त जो है, उसे परा प्रेम लक्षणा भक्ति कहते हैं। प्रेम लक्षणा भक्ति के दस लक्षण :- १. वात्सल्य २. सख्यभाव ३. शरणागति ४. माधुर्यभाव ५. स्मरणा शक्ति ६. परम विराहाशक्ति ७. स्वरूपा शक्ति ८. तन्मया शक्ति ९. गुणपूजा १०. महात्म्य शक्ति हैं। अत: परा भक्ति में अनन्यता की विशेषता होने से - 'अनन्य परा दशधा

सद्गुरु का तारतम-मंत्राधार ज्ञान। जैसे -

वृथां का निगमो रे, पामी पदारथ ❊ चार।
उत्तम मानखो खंड भरथनों, श्रेष्ठ कुली सिरदार।।
- (किरंतन, प्र. १२५/ चौ.१)।

१४. अक्षरातीत अद्वैत पूर्णब्रह्म परमात्मा के अंशावतार श्रीकृष्णजी का ब्रजमण्डल में आकर ब्रह्म की बाललीला ११ वर्ष ५२ दिन पर्यन्त करने पर भारत वर्ष के गौरव में चार चाँद लग गए।

प्रेमलक्षणा भक्ति' कहते हैं। जैसे-

तो नवधा से न्यारा कह्या, चौदे भवन में नाहिं।
सो प्रेम कहां से पाइये, जो रहत गोपिका माहिं।।
- (परिक्रमा, प्र. ३९/चौ.५)।

❊ चार पदार्थ - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चार पदार्थों में से मोक्ष जो है, वह साधन रूप में नहीं है। मोक्ष इष्ट के धाम और इष्ट की प्राप्ति है, अतः यह साधन में न होकर साध्य में होने से हमें श्रीतारतम स्वरूप ने जो चार पदार्थ दिये हैं; वे उपरोक्त हैं।

उक्त पदार्थों की सिद्धि नरात्मा मात्रा को मिलती है। यहाँ के मनुष्य के आध्यात्मिक वैभवों को देखकर स्वर्ग-वैकुण्ठस्थ कार्य-ब्रह्म, देवी-देवता लोग तरसते तथा लार टपकाते हुए इस तरह इन भारत वर्ष की नरात्माओं के भाग्य की प्रशंसा करते हैं। जैसे-

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारत भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूता भवन्ति भूयः पुरुषासुरत्वात्।।

अन्वयार्थ - गायन्ति देवा: किल गीतकानि = स्वर्गस्थ देवता लोग निरंतर गुण-गान गाते हुए कहते हैं कि; धन्यास्तु ये भारत भूमिभागे = वे मनुष्यात्मा अहो भाग्यवान हैं, धन्य-धन्य है, उनका मनुष्य जीवन; स्वर्गापवर्गस्यच = स्वर्ग और वैकुण्ठ के सुखों के; हेतुभूता = हेतु, कई गुना अखण्ड अविनाशी सुखदायी स्थान-लोक में पहुँचने वाले भाग्यवान बनने के स्थान में वे हैं, हम तो; भवन्तिभूय: पुरूषा: सुरत्वात् = उनके भाग्य के आगे शर्मिन्दा हैं, ऐसा कहते हुए पछताते रहते हैं, सतलोक के त्रिदेवा और स्वर्ग के देवता लोग।

भावार्थ - स्वर्ग और मोक्ष के कारणभूत ऐसे देवदुर्लभ योनी वाले भारत वर्षस्थ मनुष्यात्माओं का देव भी धन्य-धन्य कहते हुए यशोगान करते हैं। क्योंकि यह कर्मभूमि है, इसके अतिरिक्त अन्य जितने भी लोक तथा खण्ड हैं, सब भोग्यभूमियाँ हैं। अत:

तत्रापि भारतमेव वर्ष कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट बर्षाणि स्वर्गिणां-पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति।।

-(भा, स्कन्ध ५-१७-११)।

अन्वयार्थ - तत्रापि भारतमेव वर्ष = इन नवों खण्डों में से भारतवर्ष ही; कर्मक्षेत्रम् = कर्मभूमि है; अन्यान्यष्ट बर्षाणि = अन्य आठ खण्ड-वर्ष तो; स्वर्गिणाम् पुण्यशेषोपभोग: = स्वर्गवासी पुरुषों के स्वर्गभोग से बचे हुए पुण्यों के भोगने के; स्थानानी = ये स्थान; भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति = स्वर्गपद के सुखों के शेष होने से इसे भूतल का स्वर्ग कहते हैं।

अर्थात् जम्बू द्वीप के नवों वर्षों में एक मात्र भारतवर्ष ही कर्मभूमि है।

अन्य आठ वर्ष तो स्वर्गवासी पुरुषों के स्वर्ग सुख भोग से बचे हुए पुण्यों को भोगने का स्थान हैं। अतः अन्य छः द्वीपों और इन आठों खण्डों को भूतल का स्वर्ग भी कहते हैं।

जैसे कि मानो - भारतवर्ष कर्मभूमि में कर्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञान में - कर्मरूपी (इष्टा-पूर्त) धर्म मार्ग से एक मनुष्यात्मा द्वारा ११ लाख ११ हजार १११ रू. ११ पैसे का पुण्य कमाने पर उसकी मृत्यु हुई। वह स्वर्ग गया, उसे वहाँ उसके पुण्यानुसार अलग-अलग दर्जे के पुण्य-सुख भोगाने की व्यवस्था वाले स्थानों में से ११ लाख के पुण्य स्वर्ग में भोगाये गये। तत्पश्चात् उसे ११ हजार के पुण्य सुख के लिए सात पाताल लोक, महर्लोक, जनलोक तथा तपलोक में कहीं भी ले जाकर ११ हजार के दर्जे का सुख भोगाया गया। पुनः १११ रू. का बाकी है, उसके लिए उसे मृत्युलोक के छः द्वीपों में भेजा गया। अब भी अवशेष पुण्य ११ पैसे का रहा, उसके वास्ते भारतवर्ष के आस-पास जो आठ खण्ड हैं, उन खण्डों में जन्म धारण कराकर, पूर्व पुण्य सुख भोगाकर समाप्त करायेंगे। तदुप्रान्त पुनः इस कर्मभूमि (पुण्य कमाने का स्थान) भारतवर्ष में जन्म प्राप्त कर पुण्य कमाने लगेंगे।

✡ ए रे निमूना भान का, मेरे पीऊजी को दिया ना जाए।
ए जोत धनी इन भांत की, कोट ब्रह्मांड में न समाए।।
- (प्रकाश हिंदी, प्र. ६/चौ. १५)।

भावार्थ - मैं इस तारतम महामंत्र की तेज-जोत के प्रकाश को समझाने के लिए किसका दृष्टांत पेश करूँ, संसार में सूर्य के समान तो दूसरा

खण्ड में हुआ।

१६. वेद-शास्त्र-पुराणों तथा कुरान-बाइबलादि द्वारा वर्णित २८ वें कलियुग में जड़-चेतन की गति-मुक्ति के कारणभूत महामति विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंकावतार श्रीप्राणनाथजी के चरण स्पर्श का सौभाग्य भी इसी खण्ड ने प्राप्त किया। इस प्रकार अनेकानेक कार्यकारणों से भारतवर्ष के गौरव का तो अहोभाग्यमहोभाग्य हुआ ही, इसके साथ-साथ यह मृत्युलोक कर्मभूमि भी धन्य-धन्य हुई। इस कर्मभूमि भारत वर्ष के मानवजीवन के भाग्य की जितनी भी प्रसंशा करें कम ही रहेगी।

इस पचास करोड़ योजन * विस्तारवाले मृत्युलोक केचौरासी

कोई है ही नहीं। किंतु सूर्य का दृष्टांत भी नहीं दिया जा सकता क्योंकि सूर्य तो केवल साढ़े तीन करोड़ योजन तक ही प्रकाश पहुँचाता है। मेरे धनी की तारतम ज्योत तो करोड़ों ब्रह्मांड को प्रकाशित कर आगे निकल गई।

*** अतः - विकारैः सहितोयुक्तैर्विशेषादिभिरावृतः।**
अण्डकोशोबहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृत।।
- (भा. स्कन्ध ३/११-३९)।

अन्वयार्थ - विकारैः सहितोयुक्तः = दस इन्द्रियाँ, पाँच तत्त्व तथा मन इन सोलह विकारों सहित; विशेषादि भिरावृतः = प्रकृति, महतत्त्व, अहंकार और पंचतन्मात्रायें इन आठ प्रकृतियों से मिलकर बना हुआ; अण्डकोशः = अण्डाकार चौदह लोक रूपी ब्रह्माण्ड; पञ्चाशत्कोटी विस्तृत = पचास करोड़ योजन लंबा-चौड़ा विस्तार वाला है; बहिरयमः= जिसे बाहर से अष्टावरण ने चारों ओर से घेर रखा है।

लाख योनि में मनुष्य की प्रधानता है, यहाँ पर चौरासी लाख योनियों की ❋ आबादी है। प्रत्येक प्राणी अपने-अपने शुभाशुभ

भावार्थ - प्रकृति, महतत्त्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा इन आठ प्रकृतियों के साथ दस इन्द्रियाँ, मन और पञ्चभूत इन सोलह विकारों से मिलकर बना हुआ यह ब्रह्माण्ड कोश भीतर से पचास करोड़ योजन विस्तार वाला है।

❋ (१) शास्त्रों में चौरासी लाख योनि की संख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से मिलती है। यथा -

जलजा-नवलक्षाणि स्थावर लक्षविंशतिः।
कृमयो रुद्र लक्षाणि पक्षिणां दशलक्षकाः।।
त्रिंशल्लक्षाणि पशवश्चतुर्लक्षाणि मानवाः।

चौरासी लाख योनियाँ - (१) "**चतुर्लक्षाणि मानवाः**" - चार लाख मुनष्य (२) "**जलजा नवलक्षाणि**" - नौ लाख जलचर (३) "**पक्षिणां दशलक्षकाः**" - दस लाख पक्षी (४) "**त्रिंशल्लक्षाणि पशवः**" - तीस लाख चार पाँव वाले पशु (५) "**कृमयो रुद्र लक्षाणि**" - ग्यारह लाख कीट पतंग (६) "**स्थावरा लक्षविंशतिः**" बीस लाख योनियाँ स्थावर वृक्षादि हैं।

(२) किसी-किसी के मत से -

नवलाख जलके जीव बखाना, पक्षीगण दशलक्ष प्रमाना।
किरमि कीट एकादश लाखा, तेईस लाख चतुष्पद भाखा।।
सत्ताईस लाख स्थावर जानो, चार लाख मानुष तन मानो।
अन्य योनि निश्चय नहीं गावा, मुक्ति द्वार मानुषतन पावा।।

कृत कर्म के अनुसार योनि प्राप्त करके निरंतर दु:ख-सुख का भोग किया करता है * । वस्तुत: भूतल से एक लाख योजन ऊपर सूर्य और दो लाख योजन ऊपर चन्द्र भ्रमण करते हैं। अन्य नौ ग्रह, सत्ताईस नक्षत्र और तारागण भी इसी प्रकार दूर-दूर पर भ्रमण करते हैं। उनसे इस मृत्युलोक के कुछ भागों में * प्रकाश मिला करता है। इस लोक को पहला मजल

* ऊर्ध्वंगच्छन्ति सत्त्वस्था: मध्येतिष्ठन्ति राजसा:।
जघन्यगुणवृत्तिस्था: अधोगच्छन्ति तामसा:।।
- (गीता, १४-१८)।

अन्वयार्थ - ऊर्ध्वंगच्छन्ति सत्त्वस्था: = सतगुण में स्थित ऊपर की ओर जाते हैं; मध्येतिष्ठन्ति राजसा: = मृत्युलोक में जन्म लेकर रहेंगे, रजोगुणवाले; जघन्यगुणवृत्तिस्था: = आलस्य, प्रमाद आदि वृत्तियों में स्थित; अधोगच्छन्ति तामसा: = नीचे की ओर (अधोगति) स्थित नीच योनियों में जाते हैं।

भावार्थ - सत्त्वगुण में स्थित, सतोगुण की विशेषता वाले पुरुष अंत में स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं। रजोगुण में स्थित राजस पुरुष पुन: मध्य - मनुष्य लोक में ही जन्म धारण करेंगे। अत: तमोगुण की निद्रा - प्रमोद और आलस्यादि में स्थित तामस पुरुष अधोगति की ओर, नीच (सर्प-राक्षसादि) योनियों को प्राप्त होते हैं।

* **तबक चौदे इण्डमें, जिमी जोजन कोट पचास।**
साढ़े तीन कोट ता बीचमें, होत अंधेरी उजास।।
-(क. हि., प्र. १/चौ. १४)।

अत: जम्बूद्वीप के बीच (सेन्टर) से सात द्वीप के बाद जो सातवाँ

(भूमिका) कहते हैं। यहाँ पर ''नित्यप्रलय''❁ हुआ करता है। इस भूर्लोक के ऊपरी भाग में मेघ-मण्डल है, जहाँ पर वरुण, पुष्कर, काल, नील, आवर्त, द्रोण, तपो आदि अनेक मेघ निवास करते है। ये इन्द्र के आज्ञानुसार पृथ्वी पर जलवायु प्रदान करते हैं।

<u>भुवर्लोक</u> - मृत्युलोक से सौ योजन ऊपर भुवर्लोक है। इसे पितृलोक के नाम से भी पुकारते हैं। जहाँ पर अर्यमा आदि पितृगण, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, भूत, प्रेत, पिशाच, किन्नर आदि अनेक योनियों के जीव निवास करते हैं।

जहाँ तक पृथ्वी लोक के प्राणी पक्षी विमानादि जा सकते हैं, वहाँ तक मृत्युलोक माना जाता है। उसके आगे सूक्ष्म पवन है, जिसमें सूक्ष्म शरीर धारण करने वाले जैसे - भूत, प्रेत,

---

मीठा जल का समुद्र आता है; इस मीठे जल के समुद्र की चौड़ाई १ करोड़ १२ लाख योजन है। उसमें से ३४ लाख ५० हजार योजन तक सूर्य-चन्द्र का प्रकाश पहुँचा है। शेष १ करोड़ ५७ लाख ५० हजार योजन में अंधेरा रहता है. मतलब सातों द्वीपों में ही सूर्य-चन्द्र का प्रकाश पहुँचता है। कुछ भाग में मतलब - जम्बूद्वीप के बीच में चारों ओर पचीस-पचीस करोड़ में से साढ़े तीन करोड़ योजन तक पहुँचने पर, कुछ भाग में कहा है।

❁ **<u>प्रलय</u>** -

<u>प्रलय चार प्रकार के हैं</u> - नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक प्रलय और आत्यान्तिक महाप्रलय इन प्रलयों में से मृत्युलोक में ''नित्यप्रलय'' निरंतर होते रहता है।

पिशाच, यक्ष, किन्नर आदि जिन्हें सूक्ष्म जीवन-शक्ति प्राप्त रहती है, वे ही जा सकते हैं। मृत्युलोक के स्थूल शरीर वाले प्राणियों को वहाँ का पवन अनुकूल नहीं रहता, यसर्थ वहाँ जा नहीं सकते। यदि हम लोग भी अपने शरीर के पवन को योगाभ्यास के द्वारा उतना ही सूक्ष्म बना लें, तो सूक्ष्म पवन वाले देश-लोक में जा सकते हैं। इस लोक को अन्तरिक्षलोक, भुवर्लोक, द्युलोक तथा पितृलोकादि नामों से भी पुकारते हैं।

<u>स्वर्गलोक</u> - यह मृत्युलोक से तीसरा लोक है। भुवर्लोक के ऊपर के भाग में सुमेरू के शिखर पर विस्तृत रुपेण जो शोभायमान है, उसे स्वर्ग कहते हैं। यह स्वर्ग आठ पुरी युक्त दीपायमान है। यहाँ इन्द्रपुरी बीच में केन्द्र रूप है। इन्द्र पुरी को बीच में लेकर वरुण, कुबेर, यम, अश्विनीकुमार, बृहस्पति, ब्रह्मा, विष्णु, शिव की आठों दिशा में आठ पुरियाँ हैं। यहाँ स्वर्गाधीश इन्द्र आदिनारायण के दसवें स्वरूप ❁ (सुरति-प्राण)

❁ **<u>दस प्राण</u>** -

पाँच प्राण तथा पाँच उपप्राण कुल दस प्राण वायु हमारे शरीर में कार्यकर्ता के रूप में कार्य कर रही हैं जैसे - पान, अपान, व्यान, उदान और समान तथा, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय।

<u>पाँच प्राण</u> -

<u>पान वायु</u> - पान वायु का स्थान नासिका का अग्रभाग है। यह उर्ध्वगमनशील है। इसका कार्य छींकें लाना, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, तृष्णा, कलह,

सबसे प्रधान देव हैं। तैंतीस कोटि देव तथा उनकी देवाङ्गनाएँ यहाँ पर स्वर्ग सुख को स्वच्छन्दता पूर्वक विचर के भोगतीं रहतीं हैं। कल्पवृक्ष, पारिजात तथा कामधेनु के द्वारा यहाँ के

कल्पनादि विषयों में मन इन्द्रियों को प्रेरित कर जीव को भटकाने का है।

अपान - अपान वायु मल-मूत्र को बहिर्भूत करती है। इसकी अधोगति है और गुदामण्डल इसका स्थान है।

व्यान - व्यान वायु समग्र शरीर में रहकर सर्वाङ्गों को संचालित करने का काम करती है। जैसे - दौड़ना, चलना, बैठना, सोना, उठना इत्यादि।

उदान - यह उदान वायु कण्ठ स्थान में रहकर शब्द गानादि तथा राग, तान, अलापने और चौबीस घण्टों में इक्कीस हजार छः सौ साठ श्वास-प्रश्वास लेने का तथा छोड़ने का काम करती है। यह ऊर्ध्वगमनशील है।

समान - यह नाभि प्रदेश में रहकर अन्न-पानी-भोजनादि को पचाकर छहों रसों में परिणत कर शरीर को पुष्ट रखने का काम करती है।

पाँच उपप्राण -

नाग - यह संधिवात, चलवादि बीमारियों को प्रगट कर जीव को कष्ट देने का काम करती है।

कूर्म - यह नेत्र की पलाकों को खोलने-बंद करने का काम करती है।

कुकल - यह भूख और प्यास लगाने का काम करती है।

देवदत्त - इस वायु द्वारा जम्हाई, उज्जृभण (बगासा) आती है।

धनंजय - धनंजय वायु जब शरीर में अपना कार्य करती है, तब प्राणी

देवों को यथेष्ट प्रकार के इच्छानुसार - विविध प्रकार के स्वर्गीय सुख कल्पना मात्र से प्राप्त होते रहते हैं।

जो लोग कर्मभूमि मृत्युलोक से कर्म के बल पर अमुक समय के लिए स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, वे पुण्य का क्षय होने पर पुनः मृत्युलोक में जन्म-मरण के चक्कर ❁ में पड़ा करते हैं।

मर जाता है। धनंजय वायु जीव को शरीर से बाहर निकालने का कार्य करती है। जब यह अपना कार्य करती है, तब मनुष्य-प्राणी का निधन हो जाता है।

जिस तरह उपरोक्त दस प्राणवायु शरीर के कार्य-कर्ता के रूप में कार्यरत रहते हैं। उसी तरह सृष्टि में आदिनारायण के शरीरस्थ दस प्राण वायु की जगह पर इन्द्र, धर्मराज, ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि कार्यरत रहते हैं। तभी आदिनारायण के समष्टिरूप कार्य चल रहा है।

❁ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयी धर्ममनुप्रपन्ना, गतागतं कामकामालभन्ते।।

- (गी., ९-२१)।

अन्वयार्थ :- ते तम् भुक्त्वा = वे जन उसे भोगकर; स्वर्गलोकम् विशालम् = स्वर्ग लोक के विशाल सुख को; क्षीणे पुण्ये = पुण्य क्षीण होने पर पुनः; मर्त्यलोकम् विशन्ति = मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं; एवम् त्रयीधर्मम् = इस प्रकार तीनों वेदों में कहे हुए कर्मरूपी धर्म के; अनुप्रपन्नाः = शरण हुए; गतागतम् = बारम्बार आने-जाने को; कामकामाः = स्वर्ग के सुखों को भोगने की कामना रखनेवाले पुरुष; लभन्ते = प्राप्त होते हैं।

"इष्टा - पूर्त" - ❃ (धर्मकार्य) रूप कार्य करने वाले देवयोनि को प्राप्त होते हैं। यथा -

भावार्थ - वे जन, उस विशाल स्वर्ग सुख को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर पुनः पुनः मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों द्वारा कहे हुए कर्मरूप धम के शरणवाले, स्वर्ग सुख की कामना वाले बारम्बार जन्म-मरण के चक्कर को प्राप्त होते हैं।

❃ **इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढ़ाः।**
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति।।

- (मुण्डकोपनिषद, मु. १, ख. २, श्लो. १०)।

अन्वयार्थ - इष्टापूर्तम् = इष्ट और पूर्त (सकाम) कर्मों को ही; वरिष्ठम् = श्रेष्ठ; मन्यमानाः = माननेवाले; प्रमूढ़ाः = अत्यंत मूर्ख लोग; अन्यत् = उससे भिन्न; श्रेयः = वास्तविक श्रेय को; न वेदयन्ते = नहीं जानते; ते = वे; सुकृते = पुण्यकर्मों के फलस्वरूप; नाकस्य पृष्ठे = स्वर्ग के उच्चतम स्थान में; अनुभूत्वा = (जाकर श्रेष्ठ कर्मों के फलस्वरूप) वहाँ के भोगों का अनुकरण करके; इमम् लोकम् = इस मनुष्य लोक में; वा = अथवा; हीनतरम् = इससे भी अत्यंत हीन योनियों में; विशन्ति = प्रवेश करते हैं।

भावार्थ - वे अतिशय मूर्ख भोगासक्त मनुष्य इष्ट और पूर्त (सकाम) कर्मों को ही श्रेष्ठ माननेवाले उससे भिन्न वास्तविक श्रेय को नहीं जानते हैं। अतः वे अपने पुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग लोक तक के सुखों को भोगकर पुण्य क्षय होने पर पुनः इस मनुष्य लोक में अथवा इससे भी नीची शूकर-कूकर, कीट-पतङ्ग आदि योनियों में या रौरवादि घोर नरकों

✢ इष्टे यज्ञे यद्दीयते दक्षिणादि तदैष्टिकम्।
बहिर्वेद्यां च यद्दानं दीयते तद्धि पौत्रिजम्।।
वापीकूप तड़ागादि खन्यते परतुष्टये।
आरोपश्चैव वृक्षाणां पौर्तिकं तत्प्रचक्षते।।

भावार्थ - वेद-शास्त्रानुसार यज्ञ-यागादिक में जो कुछ दक्षिणा के रूप में दिया जाता है, वह 'ऐष्टिक' कहा जाता है। दूसरा - लोकोपकार के लिए वापी, कूप, तालाब, पौशालादि की व्यवस्था कर देने को एवं जनता-समाज के लाभार्थ बाग, बगीचा, सदाव्रत क्षेत्र, धर्मशाला, पौशाला, पाठशाला, गौशालादि की स्थापना करने को ''पौर्त'' कर्म कहते हैं। इस 'ऐष्टिक' और 'पौर्त' कर्म का शुभ फल भी स्वर्ग में मिलता है। सौ अश्वमेध यज्ञ से

में चले जाते हैं। तब ऐसे लोग वास्तविक श्रेय की जानकारी प्राप्त करें भी तो किस जन्म में? असोच्य ही रहता है।

✢ अन्वयार्थ - इष्टे यज्ञे यद्दीयते = कर्मरूप धर्म में जो यज्ञ - यागादिक में दान-दक्षिणा के रूप में दिया जाता है; दक्षिणादि तदैष्टिकम् = दान दक्षिणादि में व्यक्तिगत रूप में दिया हुआ 'ऐष्टिक' कहलाता है; बहिर्वेद्यां च यद्दानम् = लोकोपकार के लिए जो प्रबन्ध किया जाता है, जैसे; वापीकूप तड़ागादि = वापी-कूप, तालाब, पौशाला आदि की; खन्यते परतुष्टये = व्यवस्था कर देना, दूसरों की भलाई के लिए; आरोपश्चैव वृक्षाणाम् = बाग-बगीचा लगाना, धर्मशाला-पाठशालादि का प्रबन्ध कर देना; पौर्तिकम् तत्प्रचक्षते = पौत्रिक कर्म उसे कहते हैं; तद्धि पौत्रिजम् = सामाजिक सुविधा का प्रबन्ध, पौत्रिक धर्म कहलाता है। ''ऐष्टिक और पौर्त'' कर्म का शुभ फल भी स्वर्ग में ही मिलता है।

तो इन्द्र का पद भी प्राप्त होता है। परन्तु यह सब स्थायी नहीं है। थोड़े समय के पश्चात् पुनः चौरासी लाख योनी के चक्कर में पड़ना पड़ता है, जन्म-मरण का भय नहीं मिटता।

यहाँ स्वर्ग लोक के आसपास में जो विस्तृत अन्तरिक्ष है, वह भी स्वर्ग ही गिना जाता है। जितने भी तारागण, चन्द्र-सूर्य हैं, वे सब अन्तरिक्षमें ही विचरते हैं। एक 'शिशुमार' नामक चक्र है, जो स्वर्ग से ध्रुव पर्यन्त स्थित है। उसी में सब ग्रहगण और तारागण अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण किया करते हैं। इस प्रकार से देखा जाय, तो स्वर्ग लोक बहुत विशाल तथा स्वर्गीय उपभोगों से भरापूरा स्थान है, जहाँ पर असंख्य देवगण और पुण्यात्मा पुरुष आकर रहते हैं।

इस लोक में पृथक-पृथक तीन देवों ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तीन पुरियाँ भी हैं, जिनमें वे तीनों ही अपनी-अपनी विशेष सत्ता से नित्य निवास करते हैं। यहाँ पर स्वतः प्रकाश है। जब नैमित्तिक प्रलय (ब्रह्मा के एक दिन-१२ घण्टा बीतने पर)

सतलोक मृतलोक दो कहे, और स्वर्ग कह्या अमृत।
जो नीके किताबें देखिए, तो ए सब उड़सी असत।।

- (सिनगार, प्र. १/चौ. ८)।

भावार्थ - वेद शास्त्रों में इस संसार के सत्यलोक एवं मृत्युलोक का वर्णन क्रमशः अखण्ड तथा नश्वर रूप में किया गया है। इसके साथ ही स्वर्ग को भी अजर-अमर कह दिया गया है, किंतु वास्तविकता तो आप्तग्रन्थों (धर्मशास्त्रों) के तलस्पर्शी अध्ययन से स्पष्ट होती है कि ये उभय लोक भी सभी लोकों की तरह अस्तित्त्वहीन तथा मिटने वाले हैं।

होता है, तब पाताल से लेकर यहाँ तक सब नाश हो जाता है। यह स्वर्गलोक-मृत्युलोक से दूसरी भूमिका-मजल है। जैसे :-

✣ स्वर्गादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः।
एक योजन-कोटिस्तु महर्लोकोऽभिधीयते।।

- (विष्णु पु. २-७-१२)।

भावार्थ - स्वर्ग लोक से एक करोड़ योजन ऊपर महर्लोक स्थित है। इसे कल्पान्त स्थायी कहा गया है, क्योंकि सतलोकस्थ ब्रह्माजी के बारह घंटे व्यतीत होने पर जो नैमित्तिक प्रलय होता है, उसमें स्वर्गादि दस लोकों की तरह यह नाश नहीं होता। यह प्राकृतिक प्रलय तक स्थायी रहता है। अतः उक्त स्वर्ग के सुख तो अधिकाधिक नैमित्तिक प्रलय (ब्रह्माजी के इक्यावन मिनट पचीस सेकन्ड) तक ही रहते हैं।

<u>महर्लोक</u> - स्वर्ग लोक के आखरी किनार और महर्लोक के नीचे अर्थात् दोनों लोकों की सन्धि में ध्रुवलोक है। यह ध्रुवलोक भी महर्लोक की तरह ही कल्पान्त स्थायी है।

यहाँ पर धर्मराज अपने गणों के साथ रहते हैं। यमराज को धर्मराज तथा महारूद्र भी कहते हैं। वस्तुतः ये महारूद्र (धर्मराज) शिवजी के प्रतिनिधी स्वरूप हैं और आदिनारायण

✣ अन्वयार्थ - स्वर्गादूर्ध्वं महर्लोकः = स्वर्ग से ऊपर महर्लोक है; यत्र ते कल्पवासिनः = जिसे कल्पान्त स्थायी कहते हैं; एक योजन - कोटिस्तु = एक करोड़ योजन ऊपर; महर्लोकोऽभिधीयते = महर्लोक शोभायमान है।

के नौवें सूरता (स्वरूप) हैं।

धर्मराज अपने असंख्य गणों सहित यहीं पर पाप-पुण्य का निर्णय करते हैं। ये जब पापियों को दण्ड देते हैं, तब इन्हीं की संज्ञा (स्वरूप) यमराज हो जाती है तथा पुण्यात्मा के न्याय के समय उनकी संज्ञा धर्मराज हो जाती है। चौरासी लाख योनियों के शुभाशुभ कर्मों का यहीं पर न्याय होता है और न्याय के अनुसार ही जीव को स्वर्ग-नरक के सुख-दुःख भोगने के लिए भेजा जाता है। अतः चौदह लोक में सतलोक के सिवाय अन्य तेरहों लोक में इनका शासन ❁ चलता है। इस लोक को 'अकृत' लोक कहते हैं।

कल्पान्त के समय (सतलोक स्थायी ब्रह्माजी के १२ घण्टे) में इसका लय नहीं होता, परन्तु उस समय नीचे के दसों लोकों का नाश हो जाने पर जब धर्मराज का सारा कार्य बन्द हो

❁ यथा -

लाठी तेरह लोक पर, संजम पुरी सिरदार।
जो जाने नहीं जगदीसको, तिन सिर जमकी मार।।

- (सनंध, प्र. १७/चौ. ३४)।

अर्थ - चौदह लोकों में सतलोक के जगदीश के भक्तों तथा त्रिदेवा के भक्तों को छोड़कर अन्य तेरह लोक में धर्मराज का आधिपत्य और शासन है। जो सतलोक की भक्तिमार्ग में तल्लीन न होकर कर्म मार्ग में ही मदमस्त रहते हैं, ऐसे जगदीश के तथा त्रिदेवा के भक्ति-मार्ग के द्रोही जनों पर यमराज की लाठी चलेगी, वे जम फाँस में यमराज द्वारा दंडित होंगे।

जाता है, तब वे अपने गणों और ध्रुवजी सहित ऊपर के लोक (जनलोक) में चले जाते हैं। जब पुनः नैमित्तिक प्रलय के बाद सर्ग-विसर्ग बढ़ता है और सृष्टि प्रारम्भ होती है, तो ये फिर अपने गणों के सहित इसी लोक में चले आते हैं। यह लोक भी स्वतः ही प्रकाशयुक्त दीपायमान है।

जनलोक -

÷ द्वे कोटी तु जन लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः।
सनन्दनाद्याः कथिता मैत्रेयाऽमल-चेतसः।।

- (वि. पु., २-७-१३)।

भावार्थ - महर्लोक से दो करोड़ योजन ऊपर विस्तृत यह जनलोक शोभायमान है। जहाँ पर ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार तथा भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु, दक्ष और नारद आदि निवास करते हैं। यह भी अकृत लोक है और स्वतः प्रकाशवान है।

तपोलोक - पूर्वोक्त जनलोक से आठ करोड़ योजन ऊपर यह महान् तपोलोक है। यह भी स्वयं ही प्रकाशमान और अकृत लोक (नैमित्तिक प्रलय के आगे) है। यहाँ पर इच्छा मात्र से

÷ अन्वयार्थ - द्वे कोटी तु जन लोको = दो करोड़ योजन ऊपर जनलोक है; यत्र ते ब्रह्मणः सुताः = जहाँ ब्रह्माजी के मानस पुत्र; सनन्दनाद्याः कथिता = सनकादिक कहे जाते हैं; मैत्रेयाऽमल-चेतसः = हे मैत्रेय ! यह लोक भी स्वतः प्रकाशवान है।

सब मनोरथ-मनोकामना पूर्ण होते हैं।

महर्लोक, जनलोक और तपोलोक इन तीनों लोकों में अष्टाङ्ग योग भक्ति मार्ग के योगी, तपस्वी, संन्यासी एवं महात्मापुरुषों को उनके तप के प्रभाव से क्रमशः प्राप्त होते हैं। जो जितना विशिष्ट तपस्वी होता है, उतना ही आगे के लोकों को प्राप्त करता है। यहाँ उन्हें एक प्रकार की मुक्ति का-सा आनन्द प्राप्त होता है। परन्तु वह कल्प के अन्त (प्राकृतिक प्रलय काल) तक ही स्थायी है, उसके बाद तो वह आनन्द-सुख प्राकृतिक प्रलय में ही छिना जाता है और पुनः जन्म लेना पड़ता है।

<u>सत्यलोक</u> -

÷ षड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको विराजते।
अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः।।

- (वि. पु., २-७-१५)।

÷ अन्वयार्थ - षड्गुणेन तपोलोकात् = तपलोक से बारह करोड़ योजन ऊपर; सत्यलोको विराजते = सत्यलोक विराजमान है; अपुनर्मारका यत्र = त्रिदेवों की तीन पुरियाँ हैं, जहाँ पर; ब्रह्मलोको हि स स्मृतः = उसे ब्रह्म लोक भी कहते हैं।

अर्थ :- तपलोक से बारह करोड़ योजन ऊपर यह सत्यलोक है, जो अधिकाधिक शोभायमान है, जिसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं।

सत्यलोक में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों देवों की तीन पुरियाँ हैं। अपनी-अपनी पुरियों के ये तीनों ही अध्यक्ष हैं। यहाँ पर नाना प्रकार के पारिजातक वृक्ष, कल्पवृक्ष, मंदार, अम्बुज, नाग, पुन्नाग, उत्पल आदि वृक्षों से सुशोभित निःश्रेयस नामक वन-वाटिका है। उसका आनन्द वहाँ की पवित्रात्माएँ भोगतीं हैं। यहाँ पर मध्य में वैकुंठ पुरी (धाम) स्थित है। दाहिनी (दक्षिण) तरफ शिव की कैलाश पुरी है एवं बायीं (उत्तर) तरफ ब्रह्माजी की 'ब्रह्मपुरी' है। तीनों देवों के धामों में उनके अपने-अपने भक्तों को सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य नामक चार प्रकार की मुक्ति प्राप्त होती है। जो जिस देव का भक्त है और जिस प्रकार की भक्ति को प्राप्त हुआ है, उसे उसी प्रकार का स्वरूप प्राप्त होता है, जो विकुण्ठ ❋ गुणयुक्त होगा।

अपने-अपने आराध्य 'इष्टदेव' के धाम को प्राप्त हो जाने को 'मुक्ति' कहते हैं, जो चार प्रकार की होती है। विशेष नवधा भक्ति के साथ तप की विशेषता से सालोक्य मुक्ति प्राप्त होती है। ध्यान की विशेषता से सारूप्य, भक्ति की विशेषता से सामीप्य और ज्ञान की विशेषता से सायुज्य नाम की मुक्ति मिलती है। इन चारों मुक्तियों में सायुज्य मुक्ति सर्वश्रेष्ठ है। अतः

❋ विकुण्ठ - जो नाश, जरा, व्याधि-परिवर्तन आदि से रहित दिव्यस्वरूप हो, उसे विकुण्ठ कहते हैं। वे सब प्रकृति ही हैं तथा प्रकृति से बने होने के कारण नश्वर ही हैं।

✢ ''कल्पितो वैकुण्ठ येन लोकालोक नमस्कृतः''।
''वैकुण्ठादिषु लोकेषु गमनागमनं प्रभो।''
तत्सृष्टौ बहवो जीवाः केचिद्विष्णोरुपासकाः।
केचिच्च प्रकृतौ लीना जडास्ते नष्टचेतनाः।।
केचिद्रुद्रे रवौ केचित् रौद्रे शक्तौ तथापरे।
अन्ये कर्मरता जीवा भ्रमन्ति च मुहुर्मुहुः।।
- (सनत्कुमार सं.)।

✢ अन्वयार्थ - कल्पितो वैकुण्ठ येन = कल्पित-कल्पना द्वारा निर्माण किया गया है, जिस वैकुण्ठ धाम को; लोकालोक नमस्कृतः = अन्य तेरह लोक सर्वोत्तम मानकर नमस्कार करते हैं; वैकुण्ठादिषु लोकेषु = वैकुण्ठ - कैलाश लोक प्राप्त होने पर; गमनागमनं प्रभोः = हे प्रभु! आवागमन नहीं छुटता; तत्सृष्टौ बहवो जीवाः = इस सृष्टि में, मृत्युलोक में, अनन्त जीवात्मायें हैं, उनमें; केचिद्विष्णोरुपासकाः = केचित् विष्णुः उपासकाः = कितने तो विष्णु की उपासना में लगे हैं; केचिच्च प्रकृतौ लीना = कितने तो प्रकृति-माया में मस्त-निमग्न हुए हैं, (नास्तिक) जो; जड़ास्ते नष्ट-चेतनाः = जड़ तुल्य, चेतन हिन, बिना चेतन के-से बने हुए हैं; केचिद्रुद्रे रवौ = कितने शिवजी की उपासना में लगे हैं, तो कितने सूर्योपासना में ही मस्त हैं; केचित् रौद्रे शक्तौ तथापरे = कितने तो गौरी गणेश को ही सब कुछ मानकर उन्हीं के ध्यान - पूजन में तल्लीन हो रहे हैं; अन्ये कर्मरता जीवाः = कुछ मनुष्य कर्मकाण्ड को ही उत्तम मानकर उसी पथ पर निमग्न हो रहे हैं; भ्रमन्ति च मुहुर्मुहुः = ऐसे (नाना मत-पंथ में भटके हुए जीव) जीव बारम्बार जन्म मरण के चक्कर में घुमते ही रहते हैं, नित्य प्रलय में पड़े रहते हैं।

भावार्थ - वैकुण्ठ, कैलाश, ब्रह्मापुरी अर्थात् सतलोक आदि लोकों को प्राप्त करने से भी आवागमन का चक्कर नहीं मिटता। इस विश्व-संसार में अनन्त जीवों की आबादी-सृष्टि है। उनमें से कितने विष्णु की उपासना में लगे हैं, तो कितने ही प्रकृति-माया में लीन हैं, जो सब प्रकार से नष्ट चेतन - से हो चुके हैं। कुछ मनुष्य शिवजी का उपासना में तत्पर-तल्लीन हैं, तो कुछ सूर्योपासना में ही मस्त हैं। कुछ पुरुष गौरी-गणेश को ही परमात्मा मानकर उन्हीं के ध्यान-पूजन में मदमस्त हो रहे हैं, तो कुछ मनुष्य देवी - देवताओं को भी छोड़कर पीर-पैगम्बर, फकीरादि चमत्कारी भक्तों को ही सब कुछ मानकर उनकी उपासना में लगे हैं। अन्य कुछ मनुष्य कर्म-काण्ड को ही उत्तम पथ मानकर उसी में निमग्न हो रहे हैं। इस प्रकार नाना मत मार्गों में पड़े हुए मनुष्य बारबार जन्म-मरण को प्राप्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिवादी देवों की नवधा भक्ती के द्वारा सगुणोपासना करने वाले ब्राह्मण, वैष्णव, शैव भक्तगण अपने-अपने इष्ट देव के धाम में चार प्रकार की मुक्ति प्राप्त करते हैं। इन्हीं धामों से उन देवों के अवतार भी हुआ करते हैं। विष्णु भगवान के चौबीस अवतार ❁ यहीं (वैकुंठ)से होते हैं, वे

❁ चौबीस अवतार - १. सनकादिक २. वाराह ३. नारद ४. नारायण ५. कपिल ६. दत्तात्रय ७. यज्ञ भगवान ८. ऋृषभदेव ९. पृथुराज १०. मत्स्यावतार ११. कूर्म अवतार १२. धन्वंतरि १३. मोहिनी १४. नृसिंहावतार १५. वामन १६. परशुराम १७. वेदव्यास

वैकुण्ठ से ही आते जाते हैं। यह सत्यलोक ही पूर्वोक्त सभी लोकों का मूर्धन्य लोक है। जैसे :-

देखे सातों सागर और देखे सातों लोक।
पाताल सातों देखिया, जागे पीछे सब फोक।।

- (कलश हि., प्र.१७/चौ. ३६)

अर्थ - चौदह लोक में यह मूर्धन्य लोक-राजधानी रूप में विद्यमान है। मैंने यहाँ सात सागर और नीचे पाताल के सात लोक सहित ऊपर के सात लोक भी देखे। जैसा स्वर्ग है, वैसा ही वैकुण्ठ ❁ भी है। ये उभय स्थान सेवर के फूल के-से हैं, जो अज्ञानजन्य नींद से जागते ही स्वप्नवत् (फोक) हो जाते हैं। यह बात अविकल्प निश्चित है।

---

१८. रामचन्द्र १९. बलराम २०. कृष्णजी २१. ह्यग्रीव २२. हंसावतार २३. बुद्धावतार २४. कल्कि।

❁ सात लोक तले जिमी के, मृतलोक हैं तिन पर।
इन्द्र रूद्र ब्रह्मा बीच में, ऊपर विष्णु वैकुण्ठ घर।।

- (खुलासा, प्र.१२/चौ.२१)

भावार्थ - वेद और कतेब दोनों में इस संसार के नीचे भी सात लोक बताये गये हैं और इन सातों लोकों के ऊपर हमारा नासूत या मृत्युलोक है, ऐसा कहा गया है। इन्द्र, रूद्र (शिव) एवं ब्रह्माजी, इन देवताओं या फरिश्तों के लोक बीच में आते हैं। भगवान विष्णु का वैकुण्ठ लोक, इन सबके ऊपर चौदह लोक के इस नश्वर ब्रह्मांड में ही अवस्थित है।

इस प्रकार से विराट पुरुष के विश्वरूप में १४ लोक शोभायमान हैं, जो अंड कटाह के मध्य में स्थित हैं।

प्राकृतिक प्रलय के समय यह मिटकर आदिनारायण में लय हो जाता है। ये तीनों देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) क्षर-पुरुष आदिनारायण के आठवें, सातवें और छठवें स्वरूप हैं। अस्तु: इस सत्यलोक में स्वत: प्रकाश है तथा मृत्युलोक से यह चौथी भूमिका है। इति -

❖ द्वितीय तरङ्ग ❖

- (नरक लोक का वर्णन) -

जिस प्रकार मृत्युलोक के मनुष्य प्राणी को पुण्य कर्म से स्वर्ग-वैकुण्ठ-कैलाश आदि ऊर्ध्व लोक की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार पाप कर्म करने वालों को नरक लोक की प्राप्ति होती है। ये नरक-लोक कहाँ पर हैं और कैसे हैं? उसी का यत्किंचित् दिग्दर्शन यहाँ करा देना अनुचित न होगा।

श्रीमद्भागवत पुराण के पंचम स्कन्ध में नरकों का विस्तारशः वर्णन है। राजा परिक्षित ने श्री शुकदेव जी अवधूत से प्रश्न किया कि - हे भगवन्! यह तो बताइए कि ये नरक लोक हैं कहाँ पर? इस प्रश्न के उत्तर में अवधूत श्री शुकदेवजी समाधान करते हैं कि -

हे राजन! त्रिलोक के अन्तराल में ही दक्षिण दिशा की ओर जल के ऊपर और पृथ्वी के अधोभाग में नरक-स्थान चौरासी नरक कुण्ड हैं। इस विषय में जो विद्वान नीचे-पाताल और गर्भोदक समुद्र के ऊपर बताते हैं, वे सच्चे विद्वान् हैं। ऊपर मृत्युलोक के दक्षिण, समुद्र के ऊपर कहने वाले लोगों की बातें सही नहीं जँचती क्योंकि जब विधि-निषेधों के आधार पर स्वर्ग-नरक की व्यवस्था बाँधी गई, तो सृष्टि के शुरू से प्रियव्रत राजा तक मृत्युलोक में न द्वीप था न समुद्र। इसलिए ऊपर जमीन नीचे जल कैसे?

अधर्म कर्म करने वाले मनुष्यों को इस पंचभौतिक स्थूल शरीर को त्यागने के पश्चात् एक प्रकार का 'यातना देह' प्राप्त होता है, जो १७ तत्त्वों ❁ का होता है। यातना देह केवल नरकों के दुःखों को भोगने के लिए ही मिलता है, जो नाना प्रकार के दाह, ताप, मार, दुःख, पीड़ा आदि को सहन करने में समर्थ होता है। इसे शास्त्रों ने यातना देह, सूक्ष्म शरीर, लिंग शरीर आदि नामों से पहचान कराया है। नरकों के दुःखों का अनुभव-भोग करने के बाद यह शरीर पुनः अपने मूलभूत में लय हो जाता है। जीव फिर अपने शेष कर्मानुसार जन्मादि धारण करता है।

एक बात समझना जरूरी है कि - यमपुरी में असंख्य नरक हैं, जिसमें विधि-निषेध मर्यादा का उल्लंघन कर, अधर्माचरण करने वाले जीवों को यथाक्रम एक नरक से छुटकारा पाकर दूसरे में और दूसरे से तीसरे में ढकेल दिया जाता है। ऐसा नियम नहीं कि प्रत्येक पापी पुरुष को सभी नरक भोगने पड़ें। परन्तु जिसका जैसा अपराध होता है तदनुसार दो, चार, छः अथवा दस, बीस, पच्चीस भी भोगने पड़ते हैं।

❁ सत्रह तत्त्व :- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच विषय - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, तथा मन और बद्धि - इन १७ तत्त्वों के सूक्ष्म शरीर के अन्दर प्रवेश होकर जीव दुःख को भोगता है। सुख भोगने के लिए भी सूक्ष्म शरीर, लोक के अनुसार ही मिलता है।

पुराणों में बड़े-बड़े विस्तार वाले गहरे भयंकर घोर अन्धकार पूर्ण, जीवों को नाना प्रकार के कष्ट-दु:ख पहुँचाने की व्यवस्था वाले ८४ मुख्य नाम वाले नरक कुण्डों का उल्लेख किया है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि इतने ही हैं। शेष असंख्य तथा अप्रसिद्ध नरक और भी हैं, जो छोटे-बड़े सभी प्रकार के हैं। श्रीमद्‌भागवत पुराण के "स्कंध-५/अ. २६ में" सहस्रों नरकों को बतलाकर कार्य-कारण वश केवल २८ नरकों का उल्लेख किया है; शेष यों ही छोड़ दिये गये हैं।

अन्य वर्णन न होने का कारण यह है कि - राजा परीक्षित से, श्री शुकदेव मुनी जी के श्री मुख से बड़ी कठिनता के साथ २८ नरक कुण्डों तक का ही वर्णन सुना गया। बाद में उन्होंने कहा बस, महाराज! अब मुझसे और नहीं सुना जाता। इसीलिये शेष का वर्णन नहीं हो पाया। पर इन २८ नरकों का भी वर्णन इतना भयंकर है कि सुनते ही शरीर में रोमांच होने लगता है। इसी कार्य-कारण वश छप्पन का वर्णन फिर नहीं किया। जैसे-

छपन रह्या बिन सांभल्यां, ते तां सुणी न सक्यो राय।
कलकली कंपमान थयो, ते तां कह्या न सुण्या जाय।।

- (किरंतन, प्र. १२८/चौ. ३५)।

इसलिये चौरासी नरक कुण्डों + में से अट्ठाईस का सुने,

+ (१) उपरोक्त ८४ नरक कुण्डों में से कुछ नरक कुण्डों का नाम जानकारी के लिए रखा गया है, जो निम्न प्रकार है। जैसे- शूलप्रोत नरक, वेधन, जालबद्ध, देहचूर्ण, कुंभी पाक, अन्धकूप, धुमान्ध कुण्ड,

अन्य वर्णन किये बिना ही रह गया। राजा उसे सुन न सके कारण, दुःख और भय से वे काँप उठे। उन कुण्डों का वर्णन तो न किया जा सकता है और न किसी में उसे सुन पाने की शक्ति और धैर्य ही है। भोगना पड़े तो क्या हालत होगी?

नागवेष्टन, सर्पकुण्ड, वृश्चिक कुण्ड, शूल खड्ग, ज्वाला, क्षुरधार, मूत्रकुण्ड, शुक्र कुण्ड, तीक्ष्ण कंटक, भस्म, कर्णविट, नख, तप्ततेल, तप्तपाषाण, ज्वाला कुण्ड, कृमिभोजन, कालसूत्र, वैतरणी, रौरव, महारौरव, वज्रकण्टक, शाल्मली, प्राणरोध, दन्दशूक, क्षारकर्दम, लालाभक्ष, अयःपान, सूर्मि इत्यादि।

(२) काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशीज्ञानवर्जितः।
स याति नरकान्घोरान्महारौरवसंज्ञकान्।।

- (परमहंसोपनिषद)।

अर्थ - काष्ठदण्डो धृतो येन = संन्यासी भेष धारण मात्र करता है जो; सर्वाशीज्ञानवर्जितः = ज्ञान से हीन, केवल सबका अन्न भक्षण करने वाला; स याति नरकान्घोरान् = वह जाता है घोर नर्क में; महारौरव संज्ञकान् = महारौरव नामक।

भावार्थ - जो ज्ञानहीन हैं, वे संन्यासी - भेष मात्र के नामधारी संन्यासी बनकर सबका अन्नभक्षण मात्र करते हैं, उन्हें महारौरव नामक नरक के अतिघोर भयंकर दुःखों को भोगना पड़ता है। इति -

✤ तृतीय तरङ्ग ✤

★ अष्टावरण ★

(विराट की प्रथम समष्टि)

पूर्व वर्णित चौदह लोकों को बाहर से घेरकर आठ भाँति के आठ आवरण हैं। प्रत्येक आवरण एक-दूसरे आवरण से दस-दस गुना लम्बे-चौड़े विस्तार वाले हैं। यथा -

अण्डकोशोबहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः।
दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत्॥
- (भा. स्कन्ध ३/११/३९-४०)।

भावार्थ - अण्ड-कटाह-सा १४ लोक ब्रह्मांड, जो पचास करोड़ योजन विस्तार वाला है, उसे बाहर से आठ आवरणों ने चारों ओर से घेर रखा है। वे आवरण एक-दूसरे से दस-दस गुना विस्तार वाले हैं। अष्टावरण सहित १४ लोक पाँचवी क्षर समष्टि के अन्दर त्रसरेणु सदृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। ये आठों

अन्वयार्थ - अण्डकोशः = अण्डाकार चौदह लोक रूपी ब्रह्माण्ड; पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः = पचास करोड़ योजन लंबा-चौड़ा विस्तार वाला है; बहिरयम् = जिसे बाहर से अष्टावरण ने चारों ओर से घेर रखा है; दशोत्तराधिकैः = दस-दस गुना विस्तार वाला है, एक-दूसरे से; यत्र = जिसके (पाँचवी क्षर समष्टि के); प्रविष्टः = अन्दर; परमाणुवत् = त्रसरेणु सदृश हैं।

आवरण भगवान की अपरा प्रकृति स्वरूप * हैं।

१. पृथ्वी तत्त्व का आवरण :-

"पञ्चाशत्कोटिविस्तृत:" - पचास करोड़ योजन विस्तृत पृथ्वी के आवरण ने चौदह लोक रूपी ब्रह्मांड को चारों ओर, दसों दिशाओं से घेर रखा है। जैसे नारंगी के ऊपर उससे लगा हुआ छिलका होता है, उसी प्रकार यह आवरण भी चौदह लोकों से बिलकुल लगा हुआ है। अन्य आवरण भी एक दूसरे से मिले हुए हैं। * पाताल से शेषशायी नारायण तथा ऊपर सतलोक, त्रिदेवों की तीनों पुरियों तक को पेट में लेकर पृथ्वी

* भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकारइतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

- (गीता, ७-४)।

अन्वयार्थ - भूमि: आप: अनल: वायु: = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और; खम् मन: बुद्धि: एव च = आकाश, मन, बुद्धि और; अहंकार भी; इति इयम् = ऐसे यह ; मे भिन्ना = मेरी अलग अपरा; प्रकृति: अष्टधा = प्रकृती हैं, आठ प्रकार की।

भावार्थ - भगवान श्री कृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन! भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, मन, बुद्धि और चित्तरूप अहंकार ये मेरी आठ अलग अपरा प्रकृतियाँ हैं। इससे परे परा प्रकृति जानना।

परा-अपरा :- प्रकृति, ज्ञान और भक्ति इन तीनों में हैं। इसको जानके समझना चाहिए।

* आठ आवरण :- आठों आवरणों को उत्तरोत्तर में (ऊपराऊपर) प्याज के छिलके की तरह जानना तथा दसों दिशा से आवृत करने में नारंगी के छिलके सदृश जानना।

का आवरण (अण्ड-कटाह-सा) घिरा है। इसके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँच गुण हैं। यह पीत रंग का है और ब्रह्मा इसका देवता है। यहाँ सहस्रों सूर्यों का-सा स्वत: प्रकाश है।

२. <u>जल तत्त्व का आवरण</u> :-

पृथ्वी के आवरण के ऊपर यह जल तत्त्व का दूसरा आवरण लगा हुआ है। यह पृथ्वी के आवरण से दस गुना तथा पाँच अरब योजन विस्तार वाला है। शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार इसके गुण हैं। इसका रंग श्वेत है तथा इसके देवता विष्णु हैं और यहाँ भी सहस्रों सूर्यों का-सा स्वत: प्रकाश है।

३. <u>अग्नि तत्त्व का आवरण</u> :-

जल तत्त्व के आवरण से ऊपर, दस गुना अधिक (पचास अरब योजन) विस्तार वाला यह अग्नि तत्त्व का आवरण है। शब्द, स्पर्श और रूप ये तीन इस तत्त्व के गुण हैं। यह लाल रंग का तथा शिव इसके देवता हैं। इसमें भी सहस्रों सूर्यों का-सा स्वत: प्रकाश है।

४. <u>वायु तत्त्व का आवरण</u> :-

अग्नि तत्त्व के आवरण से ऊपर, उससे दस गुना अधिक (पाँच खरब योजन) विस्तार वाला यह पवन तत्त्व का आवरण है। इसके शब्द और स्पर्श ये दो गुण हैं। इसका हरित-सब्ज का-सा रंग है। ईश्वर इसके देवता है तथा यहाँ भी सहस्रों सूर्यों का-सा स्वत: प्रकाश है।

५. आकाश तत्त्व का आवरण :-

वायु तत्त्व के आवरण से ऊपर, उससे दस गुना अधिक (पचास खरब योजन) विस्तार वाला यह आकाश तत्त्व का आवरण है। इसका गुण एकमात्र शब्द है। इसका रंग श्याम है और इसके देवता सदाशिव हैं। यह भी सहस्त्रों सूर्यों का-सा स्वत: प्रकाशमान है।

६. मन का आवरण :- (तामस अहंकार)

आकाश तत्त्व के आवरण से ऊपर दस गुना (पाँच नील योजन) विस्तार वाला यह मन का आवरण है। इसमें अनन्त रंग तथा अनन्त मायावी लीलाएँ हैं। बाहर से तो इसमें असंख्य सूर्यों का-सा प्रकाश भासता है परन्तु अन्तर में घोरातिघोर अंधकार है।

इसमें अनन्त रंग एवं अनन्त लीलाओं का कल्पना उठा करतीं हैं। इसके अज्ञानरूप, इच्छाशक्ति, महाघोर, तमरूप आदि अनेक नाम हैं। यहाँ अनन्त सूर्यों का-सा प्रकाश भासता है। संसार में अनेक पुरुष इसे भी ईश्वर मानकर इसका भजन करते हैं।

७. बुद्धि का आवरण :- (राजस अहंकार)

मनरूप तामस अहंकार के ऊपर इस बुद्धि रूप राजस अहंकार का दस गुना विस्तार है। यह पचास नील योजन तक विस्तृत है। इस बुद्धि रूप आवरण में अनेक चित्र-विचित्र, मायावी चरित्र प्रतिक्षण जल तरङ्ग की भाँति उठा करते हैं।

यह बुद्धि का भण्डार क्षेत्र भी है। अनेकानेक मतमतान्तर इसी को ब्रह्म मानकर भजते हैं। इसमें माया की अनन्त लीलाएँ हैं।

८. <u>चित्त का आवरण</u> :- (सात्त्विक अहंकार)

बुद्धि से ऊपर, दस गुना (पाँच पदम योजन) विस्तार वाले इस चित्तरूप अहंकार का आठवाँ आवरण है। इसी को सात्त्विक अहंकार भी कहते है। इसका धूम्र वर्ण है और इसने शुद्ध सत्त्व गुणों को धारण किया है। इसके अन्तर्गत भी अनेक सूक्ष्म दृश्य प्रतीत होते हैं, जिसका साक्षात्कार योगी पुरुषों को हुआ करता है। कई मत-मतान्तर पंथ वाले इसको भी ईश्वर मानकर भजते हैं। इति - ❋

❋ <u>नोट</u> :- चौदह लोकों के समष्टि रूप विराट सहित इन आठों आवरणों को आदिनारायण (महाविष्णु) के स्थूल शरीर का बिन्दु स्वभाव कहते हैं।

✤ चतुर्थ - तरङ्ग ✤

ॐ ज्योतिः स्वरूप

(महाविष्णु के स्थूल में नाद स्वभाव, व्यष्टि रूप प्रणव ॐ ज्योती स्वरूप)।

पूर्व कथित अष्टावरण के सिर पर यह नाद स्वभाव ज्योति स्वरूप है। इसे व्यष्टि-ज्योति स्वरूप भी कहते हैं। यह स्वतः परम प्रकाश स्वरूप महावीर्य तथा ब्रह्मादि त्रिदेवों को भी अलभ्य है। इसका शिवलिंगाकार पञ्चमुखी स्वरूप है तथा एक अरब योजन का विस्तार है। इसकी दस भूजा, पाँच सिर और पन्द्रह नेत्र हैं। यह शुद्ध अहंकार स्वरूप, विराट का मूल तथा जड़-चेतन की गाँठ रूप है।

इस व्यष्टि-ज्योति स्वरूप में मुख्य पाँच शक्तियाँ हैं। जैसे - इधिदीपा, चमोचक, ऊर्ध्वगा, मध्यमा और परमा। इन प्रत्येक शक्तियों के साथ अन्य अनेक शक्तियाँ भी रहती हैं। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीनों गुण प्राधान्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी इसी से उत्पन्न होते हैं। यह व्यष्टि ज्योति स्वरूप बड़ी मायावी ✲ है। लोक में ये विभिन्न नामों से प्रसिद्ध है। जैसे :-

✲ (१) **पहेले पेड़ देखो माया को, जाको न पाइए पार।**
जगत जनेता जोगनी, सो कहावत बाल कुमार।।

- (किरंतन, प्र. २८/चौ. ३)।

पंचमुखी शक्ति, अहंकार स्वरूप, प्रणवाक्षर शिव, मृत्युंजय, शब्द ब्रह्म, ज्योति स्वरुप, ओमित्यक्षर, व्यापक ब्रह्म,

भावार्थ - चौदह लोकों के चौरासी लाख योनियों को गुलाम बना कर नचाने वाली माया के मूल को देखो और पहचानो! इसका पार नहीं पाया जा सकता। कैसी विचित्र विडम्बना है कि सारे संसार को जन्म देनेवाली योगिनी माया स्वयं बालकुमारी कहलाती है।

(२) मात पिता बिन जनमी, आपे बंझा पिंड।
पुरुष अंग छूयो नहीं, और जायो सब ब्रह्मांड।।

- (किरंतन, प्र.२८/चौ. ४)।

भावार्थ - एक तो यह स्वयं माता-पिता के बिना जन्मी है और दूसरे शरीर से बाँझ है। पुरुष के शरीर का स्पर्श पाये बिना ही सारे संसार की जन्मदात्री बन गई है।

(३) विष्णु, ब्रह्मा रूद्र जनमें, हुई तीनों की नार।
निरलेप काहू न लेपही, नारी है पर नाहीं आकार।।

- (किरंतन, प्र.२८/चौ.८)।

भावार्थ - ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र (शिव) तीनों को इसने जन्म दिया और फिर तीनों की नारी बन गयी। इतना करके भी यह निर्लिप्ता स्वयं किसी पर आसक्त नहीं होती। कहने को तो यह मोहिनी नारी है, परन्तु इसका कोई आकार नहीं है।

(४) आद अंत याको नहीं, नहीं रूप रंग रेख।
अंग न इंद्री तेज न जोत, ऐसी आप अलेख।।

- (किरंतन, प्र.२८/चौ.५)।

जीव स्वरूप, महा पुरुष और घट-घट वासी राम ❀ इत्यादि। इसकी जाग्रत अवस्था है। यह क्षर-पुरुष-आदिनारायण का पाँचवा स्वरूप (सुरति) तथा मृत्युलोक से पाँचवी भूमिका है। यहाँ पर कोई-कोई विरले योगेश्वर ही पहुँचते हैं।

वास्तव में यह शेषशायी अहंकार पुरुष का चेतन है परंतु इसे व्यष्टि-ज्योति स्वरूप के नाम से भी पुकारते हैं। यद्यपि वास्तविक ''ज्योति स्वरूप'' का स्थान तो आदिनारायण से भी परे बेहद में अव्याकृत के स्थूल में है, अत: गायत्री का वास्तविक स्थान भी वहीं पर है। असंख्य ब्रह्मांड की व्यष्टि-ज्योति स्वरूप समस्त जीवों की चैतन्य समष्टि का उद्गम स्रोत जड़-चेतन की गाँठ का मूलकारण भी वहीं है, क्योंकि वहीं से जीवों सहित संख्यातीत ब्रह्मांडों का उदय लय भी होता है। पुन: यहाँ प्रत्येक ब्रह्मांड के लिए जितने भी जीवों को

भावार्थ - इस माया स्वरूपिनी का न आदि है न अन्त ही है, न रूप है न आकार ही है। यह अंग, इन्द्रिय, तेज, ज्योति आदि से विहीन अदृश्य और अगोचर है।

❀ यथा :- अहंकार, पंचमुखी, ओमित्याक्षर,
शब्दब्रह्म, व्यापक, जीवस्वरूप।
घट-घट वासी राम, ज्योतिस्वरूप,
मृत्युंजय, प्रणवाक्षर महापुरुष।।
- (संतवाणी)।

भेजा जाता है, वे सब अपने-अपने ब्रह्मांड के लिए, अपने-अपने ब्रह्माण्ड के साथ संगठित व्यष्टि-ज्योति स्वरूप ब्रह्म के द्वारा ही आया करते हैं। यसर्थ इसे भी ज्योति स्वरूप के नाम से ही पुकारते हैं।

अहंकार पुरुष व्यष्टि-ज्योति स्वरूप जो प्रत्येक ब्रह्मांड के अध्यक्ष के रूप में संगठित है, उसके अनगिनत तथा असंख्य स्वरूप हैं। यहीं संसार में चौंसठ देवियों के अवतार के रूप में अवतरित भी होती है। जैसे :- भगवती, भवानी, * काली,

---

भगवती देवी राजा सूरथ से कहती है कि -

*** (१) अहं यमनुगृहणामि तस्मै दास्यामि निर्मलाम्।**
निश्चलां सुदृढ़ां भक्तिं श्रीकृष्णे परमात्मानि।।

- (देवी भागवत)।

अन्वयार्थ - अहं यमनुगृहणामि = मैं जिस पर अनुग्रह करती हूँ; तस्मै दास्यामि निर्मलाम् = उसे देती हूँ, स्वच्छ-निर्मल; निश्चलां सुदृढ़ां भक्तिम् = निश्चल-सुदृढ़ भक्ति; श्रीकृष्णे परमात्मानि = श्रीकृष्ण परमात्मा की।

भावार्थ - जो मानव स्वात्मोद्धार के इच्छुक सुपात्र हैं, मैं उन मानवात्मा पर अनुग्रह करती हूँ और उसे परात्पर परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण के प्रति निर्मल, निश्चल एवं सुदृढ़ भक्ति में पूर्ण श्रद्धा-विश्वास प्रदान करती हूँ।

(२) करोमि वञ्चनां यं यं तेभ्यो दास्यामि सम्पदम्।
प्रातः स्वप्नस्वरूपश्च मिथ्येति भ्रमरूपिणीम्।।

- (देवी भागवत)

महाकाली, भद्रकाली, इत्यादि। इसे मूल ज्योति स्वरूप (असली) से पृथक समझने तथा समझाने के लिए ही व्यष्टि-ज्योति स्वरूप एवं नाद स्वभाव ❁ ज्योति स्वरूप कहा है।

अन्वयार्थ - करोमि वञ्चनां यं यम् = जिस - जिस को मैं ठगना चाहती हूँ; तेभ्यो दास्यामि सम्पदम् = उसे सौ गुना भौतिक सम्पदा (धन, संपत्ति, वैभवादि) देती हूँ; प्रातः स्वप्नस्वरूपश्च = जैसे सवेरा होते ही स्वप्नवत् पदार्थ; मिथ्येति भ्रमरूपिणीम् = मिथ्या भ्रमरूपी साबित होते हैं।

भावार्थ - जिसे मैं नर-तन में आकर भी आत्मा के तरण-तारण विषय बेपरवाह, अपात्र, कुपात्र समझती हूँ, उसे मैं ठगती हूँ। तो कैसे ? मैं उसे प्रातःकालीन स्वप्न की तरह मिथ्या एवं भ्रमरूपी सांसारिक धन, यश, मान, बड़ाई युक्त खिताब-पद्वी से विभूषित सम्पदा प्रदान कर सर्व ओर से संपन्न कर देती हूँ।

❁ नाद कोटि सहस्त्राणि बिन्दु कोटिशतानि च।
सर्वे तत्र लयं यान्ति ब्रह्म प्रणवनादके।।

- (नाद - बिंदु उप.)।

अन्वयार्थ - नाद कोटि सहस्त्राणि = इस प्रणव ब्रह्म के स्वरूप में करोड़ो हजारों नाद (व्यष्टि ज्योति स्वरूप) और; बिन्दु कोटिशतानि च = करोड़ों, सैकड़ों, बिंदु, १४ लोक विराट, अष्टावरण सहित के; सर्वे तत्र लयं यान्ति = उक्त सभी प्रणव-ज्योति स्वरूप में लय हो जाते हैं; ब्रह्म प्रणवनादके = नाद स्वरूप प्रणव ब्रह्म में।

भावार्थ - इस अव्याकृत के स्थूल अपर प्रणव ब्रह्म स्वरूप में हजारों, करोड़ों नाद स्वभाव अर्थात् व्यष्टि ज्योति स्वरूप एवं गायत्री देवी और सैकड़ों करोड़ों बिन्दु स्वभाव तथा अष्टावरण सहित चौदह लोक अंत में

अतः

+ अकारश्चाप्युकारश्च मकारो बिन्दुनादकौ।
पञ्चाक्षराण्यमून्याहुः प्रणवस्थानि पण्डितः।।

- (तंत्रोक्त)।

भावार्थ - अकार से शिव, उकार से ब्रह्मा, मकार से विष्णु, बिन्दु से अष्टावरण युक्त विराट और नाद से प्रणवाक्षर नाद स्वभाव ज्योति स्वरूप की क्रमशः उत्पत्ति हुई। इन पाँचों के संयुक्ताकार को ही प्रणव स्वरूप माना गया है। इस विश्व (संसार) के सम्पूर्ण जीवों के हृदय में जो चेतन शक्तिरूप जीव हैं; उन सभी पर इसका शासन होने से इसे (नाद ज्योति स्वरूप-व्यष्टि ज्योति स्वरूप) ईश्वर भी कहते हैं। यथा :-

---

अकाट्य रूप से लय को प्राप्त होते ही रहते हैं।

+ अन्वयार्थ - अकारश्चाप्युकारश्च = (अकारः च अपि उकारःच) अकार से शिव, उकार से ब्रह्मा और; मकारो बिन्दुनादकौ = मकार से विष्णु, बिन्दु में अष्टावरण और नाद में व्यष्टि ज्योति स्वरूप है; पञ्चाक्षराण्यमून्याहुः = पंच अक्षराणि अमूनि अन्य आहुः = पंचाक्षरयुक्त कहा गया है; प्रणवस्थानि = प्रणव के स्थान को - उसे प्रणवाक्षर = प्रणव ब्रह्म पंचदेव का स्थान है, इस तरह; पण्डिताः = विद्वान् लोग कहते हैं।

+ ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढ़ानि मायया।।
- (गीता, अ.१८/६१)।

भावार्थ - यह व्यष्टि ज्योति-स्वरूप (ईश्वर) सबके हृदय में व्यापक होकर, सभी जीवों को शक्ति प्रदान करती है। इसीलिए इसे ईश्वर कहा गया है, जो युक्तियुक्त ही है। परन्तु वास्तविक ईश्वर तो क्षरपुरुष, आदिनारायण-महाविष्णु का ही नाम है क्योंकि जीव-ईश्वर की उपाधि आदिनारायण से ही ''एकोऽहं बहुस्याम्'' रूप माया के द्वारा उत्पन्न होती है एवं जीवों को प्रेरणादि भी मुख्यतः उसी से प्राप्त होती है। लेकिन उपरोक्त आदिनारायण के अमुक गुण इस (व्यष्टि-ज्योति स्वरूप) में भी विद्यमान होने के कारण इन्हें भी ईश्वर के नाम से पुकारा गया है।

गायत्री शक्ति :- अहंकार पुरुष व्यष्टि-ज्योति स्वरूप के निर्मल चेतन स्थान में गायत्री का निवास है। यहाँ गायत्री के साथ और भी सहस्त्रों शक्तियाँ रहती हैं। यहीं से ऋग्वेद,

+ अन्वयार्थ - ईश्वरः = अन्तर्यामी परमेश्वर; सर्वभूतानाम् = सम्पूर्ण प्राणियों के; हृद्देशे = हृदय में (चेतन रूप से); अर्जुन = हे अर्जुन, हे मुमुक्षुजनों; तिष्ठति = बैठकर; भ्रामयन् = भ्रमित करता हुआ (भ्रमित करके); सर्वभूतानि = सब भूत-प्राणियों के; यन्त्रारूढ़ानि = शरीर रूपी यन्त्र के द्वारा; मायया = अपनी माया में; उनके ही कर्मों के आधार पर घुमाते रहते हैं।

यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद सोऽहं-सोऽहं श्वास प्रगति से उत्पन्न होकर स्थूल रूप में आये और संसार में प्रसिद्ध हुए है। यह गायत्री देवी यहाँ निरंतर चारों वेदों का गान करती है। किसी के मत से इसका वाहन मयूर है, तो किसी के मत से हंस ❁ है। इसके महल, मंदिर, छत्र, सिंहासन, स्वरूप-सिंगारादि सम्पूर्ण वैभव अत्यंत मनमोहक तथा स्फटिक (श्वेत) वर्ण के हैं। इस गायत्री देवी के अन्तःकरण में ब्रज की सम्पूर्ण

❁ गायत्री देवी चारों वेदों का ज्ञान स्वरूप है। उसके वाहन विषय दो मत होने का क्या कारण? गायत्री देवी के वाहन का आध्यात्मिक दृष्टि से विवेचन करनेवालों की दृष्टि में हंस युक्तियुक्त है। क्योंकि हंस में दूध पानी को अलग करने की शक्ति रहती है। उसी तरह वेदों में भी माया-ब्रह्म विषय अलग-अलग निर्णय करने का लक्षित ज्ञान है। जिसके सहारे परात्पर अक्षरातीत धाम तक पहुँच सकते हैं।

पुनः भौतिक दृष्टि से विवेचन करने वालों की दृष्टि में मयूर ही ठीक इसलिए है कि - मयूर के अंदर भयंकर जहर भरे सर्पों को हजम करने (पचाने) की शक्ति है और बाहर पंख से लोगों का मन मोहित करने की शोभायुक्त शक्तियाँ हैं। जैसे - वैदिक ज्ञान द्वारा लक्षित अविनाशी सच्चिदानन्द सुख को ठुकराकर स्वर्ग-वैकुण्ठ के झल्लरी मल्लरी से मन मोहित होकर भूलनेवाले, भला कैसे उसे वास्तविकता तक पहुँचकर गायत्री का वाहन हंस मान सकें? अतः वास्तविकता समझें तो शत प्रतिशत हंस ही युक्तियुक्त ठहरता है। इस विषय विकल्प की गुञ्जाईश ही कहाँ?

लीला तथा रासलीला का यावत् प्रतिभास पड़ा है। वे चारों वेदों का गान करती हैं और ब्रज-रास लीला का जाप करती हैं। यह आदिनारायण का चौथा स्वरूप तथा मृत्युलोक से छठवीं भूमिका है। गायत्री देवी की उपासना करने वाले गायत्री मंत्र का जाप करते हैं। * इति -

---

* **गायत्री मंत्र :- ॐ भू: भूव: स्व: तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न : प्रचोदयात्।**

अन्वयार्थ - ॐ = पंचमात्रा युक्त वेदों के अधिष्ठात्री प्रणव रूप पाँचों वेदों द्वारा निश्चित; भू: भूव: स्व: = त्रिलोक (स्वर्ग, मृत्यु, पाताल) से लोगों को; तत् सवितु: = उस अक्षरातीत परात्पर सवितु :- अद्वैत ब्रह्म को ही; वरेण्यम् = वरण-धारण करना चाहिए; भर्गो देवस्य धीमहि = हे सच्चिदानन्द परमात्मा! हमारे अन्त:करणादि वृत्तियों का नाश करने के लिए, हमारी बुद्धि को; धियो यो न: प्रचोदयात् = भक्ति योगस्थ आत्मज्ञान की ओर प्रेरित करें।

भावार्थ - सत् चित आनन्द (उत्तम पुरुष) स्वरूप उस सवितादेव के उत्तम श्रेष्ठ भजनीय चेतन ज्योति का चिंतन करते हैं, जो हमारे अन्त:-करणादि वृत्तियों को मलविक्षेप आवरण नाशार्थ निष्काम कर्मयोग भक्ति मार्गस्थ आत्मज्ञान में प्रेरित करें।

❖ पञ्चम् तरङ्ग ❖

✶ मोहतत्त्व ✶

(आदिनारायण के सूक्ष्मतम स्वरूप दूसरी-अन्तः समष्टि)

यह आदिनारायण का सूक्ष्म शरीर है। इसके मोहतत्त्व, निराकार, निरंजनादि नाम हैं। अतः इसकी घोरातिघोर स्वप्नावस्था है। उक्त स्थूल शरीर से ऊपर यह सूक्ष्मतम ❁ शरीर अत्यधिक महान् अंधकार नींद स्वरूप है। इसके अपने अन्तर्गुणों के कारण अति ही अन्धकार पूर्ण होते हुए भी यहाँ असंख्य अनन्त सूर्यों का-सा पूर्ण रूपेण प्रकाश भासता है।

❁ अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम्।
अनादिमध्यनिधनं नित्यं वाङ्मनसः परम्।।

- (भा., २-१०-३४)।

अन्वयार्थ - अतः परम् सूक्ष्मतमम् = इस (स्थूल) से परे भगवान का अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप है; अव्यक्तं निर्विशेषणम् = जो अव्यक्त, निर्विशेष और; अनादिमध्यनि धनम् =आदि, मध्य और अन्त रहित; नित्यं वाङ्मनसः परम् = नित्य है, जो मन, वाणी से परे है।

भावार्थ - आदिनारायण क्षर-पुरुष के नाद-बिन्दुमय स्थूल स्वरूप से परे अगणित-असंख्य विश्व-विराट का कारणभूत आदिनारायण का यह सूक्ष्मतम स्वरूप अव्यक्त है। जो मन, वचनादि से परे तथा निर्विशेष है एवं जिसके मूल तत्त्व (अक्षर का मन) का कभी उत्पत्ति-लय नहीं होता।

स्थूल ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण अज्ञान का मूल कारण यही है। असत्, जड़, दु:ख ये तीन इसी के स्वभाव हैं तथा जड़-चेतन की मूल गाँठ यही है।

इसके अंगभूत रूप में ज्ञान शक्ति गायत्री, चारों वेद, दस महाविद्या[×] आदि हैं। यहाँ पर विद्या, ब्रह्मविद्या तथा अन्य चौबीस सहस्त्र शाक्तिओं सहित प्रचंड सुमंगला (सुमना) शक्ति रहती है। अत: इसका अध्यात्म, अधिभूत और अधिदेव रूप से बहुत विस्तार है।

यहाँ पर अनेक मनमोहक चमत्कार हैं। अत: सम्पूर्ण लीलाओं सहित व्रजमंडल की व्रजलीला तथा रास मण्डल की महारास लीला जो आदिनारायण के महाकारण मंडल के शुद्ध कारण और महाकारण में हैं, उन दोनों का यहाँ पर प्रतिभास पड़ा है।

× दस महाविद्या:-

काली तारा महाविद्या षोड्शी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।
बगुलामुखी सिद्धविद्या मातङ्गी कमला वै।

- (चामुंडतन्त्र)।

विद्या का अर्थ मायाशक्ति है। ये दसों महाविद्या महाप्रबल मायाशक्ति स्वरूप हैं। हमारे पिण्ड में ये ही दस प्राणरूप हो जाती हैं। ब्रह्माण्ड में काली, तारा, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, बगुलामुखी, मातंगी और षोड्शी एवं कमला इस रूप में प्रसिद्ध है।

छहों शास्त्रवाले षटदर्शी-वेदान्तियों का यही निराकार + ब्रह्म है। भूलोक से यह सातवीं भूमिका है।

पुनः अव्याकृत के सूक्ष्म-विद्यापाद में जो काल निरंजन (पुरुष) का स्थान है, यहाँ पर वही प्रतिबिंबित होकर अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव रूप से त्रिविध हो जाते हैं। इस मोहतत्त्व सूक्ष्म शरीर में जितनी भी लीला चित्र-विचित्र हैं, वे सब उस काल निरंजन पुरुष का ही प्रतिबिम्बित रूपान्तर है। शास्त्रों में इस सूक्ष्म शरीर-मोहतत्त्व को विभिन्न नामों से ÷ पुकारा है। जैसे - महत्तम, महदब्रह्म, अचिंत्यपुरुष, महानाद, निर्गुण, शून्य, निराकार, निरंजन आदि-आदि।

अतः प्राकृतिक प्रलय में पूर्व वर्णित सभी लोकों सहित आदिनारायण के इस सूक्ष्मतम शरीर मोहतत्त्व का भी नाश अवश्यमेव हो जाता है। चौथे महाप्रलय के आगे यह भी अकृत लोक नहीं, कृत लोक ही है। इति -

---

\+ निराकार वैकुण्ठ पर, तिन पर अक्षर ब्रह्म।
अक्षरातीत ब्रह्म तिन पर, यों कहे ईसे का इलम।।
- (खुलासा, प्र. १२/चौ. २२)।

भावार्थ - शून्य, निराकार और निरंजन कहलाने वाली भूमिकाएँ वैकुण्ठ से परे हैं। इनसे परे अविनाशी कूटस्थ अक्षर ब्रह्म हैं। इनसे भी परे अक्षरातीत सच्चिदानन्द परब्रह्म हैं। यह ज्ञान तारतमीय है तथा ईसा-रूह अल्लाह श्री देवचन्द्रजी प्रदत्त है, जिन्होंने उत्तरोत्तर श्रेष्ठ-क्रम निर्धारित किया।

÷ अतः-

अचिन्त्य पुरुष, महत्तम, महदब्रह्म निर्गुण।
महानाद्, निराकार, शून्य नींद निरंजन।।
- (संत वाणी)।

✤ षष्ठ - तरङ्ग ✤

✶ सात शून्य-इच्छाशक्ति ✶

(आदिनारायण का कारण शरीर-इच्छाशक्ति सात शून्य)

(तीसरी अन्तः समष्टि)-

पूर्वकथित सूक्ष्म शरीर मोहतत्त्व से परे (ऊपर) आदिपुरुष (क्षर-पुरुष) का कारण शरीर है, जो इच्छाशक्ति सात शून्य के नाम से प्रसिद्ध है। इस कारण शरीर में सात महाशून्य प्रतिबिम्बित हैं, जिसका विस्तार एक-एक खरब योजन है। इन शून्यों से अनन्त राग-तान असंख्य मीठे-मीठे स्वर तथा अगणित रंगों की तरंगें प्रतिक्षण उठा करती हैं। इनकी अधिष्ठात्री-वास्तवी, अनिर्वचनीय, तुच्छा, शिवकल्याणी और उन्मुनी ये पाँच अति प्रबल शक्तियाँ हैं। इन पाँचों में उन्मुनी अत्यन्त प्रचंड शक्ति है। यह स्वयं आदिनारायण की सत्ता का उपभोग करती है। इन्हीं शून्यों से पूर्वोक्त आदिनारायण के सातों स्वरूप (इन्द्र, धर्मराज, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, व्यष्टि-ज्योति स्वरूप और गायत्री) की उत्पत्ति होती है। अत: अजपा-जाप, अनहद-नाद का यही स्थान है। यहाँ नित्य गोलोक की साढ़े तीन करोड़ सखियों सहित श्री राधा-कृष्ण के आनन्द विहार वाले व्रज-रास लीला का प्रतिभास पड़ा है, जो आदिनारायण के महाकारण मण्डल के कारण और महाकारण में है।

यह कारण शरीर सात शून्य इच्छाशक्ति की आनन्दमय सुषुप्ति अवस्था है। इसके दो स्वभाव हैं - इह और अनिह। 'इह' तो इच्छारूप माया है और 'अनिह' अनिच्छरूप ब्रह्म है। इस अनिह शक्ति ने आदिनारायण के महाकारण मंडल के शुद्ध सूक्ष्म में स्थित सतलोक को मकड़ी के तार के समान सूत्र से एक-दूसरे को मिला रखा है। इस (कारण-इच्छाशक्ति) के आगे जाने वाले मुक्त जीवों के लिए यह सोपानवत् बन जाती है; जिसके सहारे मुक्त जीव ऊपर महाकारण स्थान में जा सकते हैं, परन्तु इस मार्ग से आज तक कोई गये नहीं हैं ❊। इस सात शून्य इच्छाशक्ति के स्वरूप में हंसों का सरोवर है, जो महाकारण मण्डल के शुद्ध सूक्ष्म द्वारा यहाँ प्रतिभासित है। अनेक जीवों का मुक्तिस्थान भी यहीं है, परन्तु ये सब

❊ यथा :-

उपासनी निरगुन या निरंजन,
किन उलंघ्यो न जाय विष्णु को कारण।
या शास्त्र या साधू जन,
द्वैत सबे समानी सुंन।।

- (प्रकाश हिं., प्र.३४/चौ.१०)।

अर्थ - निर्गुण निरंजन निराकार ब्रह्म को और साकार ब्रह्म - ब्रह्मा-विष्णु-शिव देवादि की उपासना करने वाले साधकों में से, कोई भी आदिनारायण-महाविष्णु भगवान के कारण शरीर (इच्छाशक्ति-सात शून्य) को उलंघ कर आगे पाँव रख नहीं सका। जितने भी शास्त्र ग्रंथ या

अनित्य है, महाप्रलय तक ही रहता है। इसको निम्नोक्त प्रकार से कहा है। अतः

+ ''शून्यं तत्प्रकृतिर्माया ब्रह्मविज्ञानमित्यपि''

- (महोपनिषद्)।

इस आदिनारायण के कारण शरीर इच्छाशक्ति को शास्त्रों में शून्य, माया ब्रह्म, प्रकाशस्वरूप, प्रकृति, विज्ञान स्वरूप, पुरुष, आत्मा, ईश्वर, इच्छाशक्ति, विश्वकारण आदि विभिन्न ❁ नामों से पुकारा है। इससे परे (ऊपर) क्षर-पुरुष, आदिनारायण का जो महाकारण शरीर (स्वरूप)है, वह अन्य सबसे अति महत्त्वपूर्ण है।

साधुओं द्वारा प्रचारित साधनादि पद्धतियाँ हैं, वे सबकी सब द्वैत के विस्तार चौदह लोक तथा सात शून्य निराकार -निरंजन में ही समा जाती हैं, उससे आगे निकल नहीं पातीं।

+ अन्वयार्थ - शून्यं तत् प्रकृतिः माया = सात शून्य, इच्छाशक्ति, वह प्रकृति,पुरुष की इच्छा से उत्पन्न माया है; ब्रह्म विज्ञानम् इति अपि = ब्रह्म तो अलग विज्ञान स्वरूप है, ऐसा कहा गया है।

❁ शून्य, प्रकृति, इच्छाशक्ति, आत्मा, पुरुष, विज्ञानरूप।
मायाब्रह्म, विश्वकारण, ईश्वर, प्रकाशस्वरूप।।

- (संत वाणी)।

✤ सप्तम - तरङ्ग ✤

✶ आदिनारायण का महाकारण स्वरुप ✶

(क्षर-पुरुष आदिनारायण का महाकारण, चौथी अन्तः समष्टि)

(नौवाँ मजल)

क्षर-पुरुष आदिनारायण के चार शरीर

शरीर	मूलनाम	अवस्था	अन्तःकरण
महाकारण	नारायण	तूर्य	अहम।
कारण	इच्छाशक्ति	सुषुप्ति	चित्त।
सूक्ष्म	मोहतत्त्व	स्वप्न	बुद्धि।
स्थूल	अहंकार	जाग्रत	मन।

अतः-

+ **चाक्षुषः स्वप्नचारी च सुप्तः सुप्तात्परश्चयः।**
भेदाश्चैतस्य चत्वारस्तेभ्यस्तुर्यं महत्तरम्।।

- (श्रुति)।

+ अन्वयार्थ - चाक्षुषः स्वप्नचारी च = जाग्रत (स्थूल-पाताल से गायत्री तक) स्वप्न (सूक्ष्म) महतत्त्व और; सुप्तः सुप्तात्परः च यः= सुप्त = सुषुप्ति इच्छाशक्ति से परे यह सुप्तात् तूर्य महाकारण है; भेदाः च एतस्य चत्वारः =इनकी अलग-अलग चार अवस्थायें हैं; तेभ्यः तुर्यं महत्तरम् = उनकी चौथी अवस्था - तूर्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

भावार्थ - आदिपुरुष (आदिनारायण) की चारों अवस्थाएँ चारों स्वरूपों में उपरोक्त प्रकार से विभक्त हैं। जैसे - जाग्रत (स्थूल) अवस्था में विराट अष्टावरण सहित तथा व्यष्टि-ज्योतिस्वरूप; स्वप्नावस्था (सूक्ष्म) में मोहतत्त्व-निराकार-निरंजन; सुषुप्ति (कारण) अवस्था में इच्छाशक्ति सात शून्य और इन तीनों शरीर-अवस्थाओं से परे यह तूर्य (महाकारण) स्वरूप है, जो अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है।

भूर्लोक (मृत्युलोक) से यह नौवीं भूमिका है, इसमें मूल अव्याकृत के महाकारण का प्रतिबिम्ब भी विपरीत गुणयुक्त पड़ा है। अर्थात् मूल अव्याकृत की चारों लीलाओं नित्य वृन्दावन (रास), व्रज, पुरुष (चार द्वीपों की) और सुमंगला शक्ति का इसमें यथाक्रम प्रतिभास ❀ है। महाविष्णु (आदिनारायण) का यह महाकारण मण्डल यद्यपि एक ही है, तथापि लीला भेद से इसे चार भागों में (शुद्ध स्थूल, शुद्ध सूक्ष्म, शुद्ध कारण तथा शुद्ध

❀ ए जोत पकड़ी ना रहे, चली इंड फोड़ सुन निराकार।
सदासिव महाविष्णु निरंजन, सब प्रकृत को कियो निरवार।।
- (प्रकाश हिंदी, प्र.६/चौ.१६)।

भावार्थ - उनके (सद्गुरू के तारतम ज्ञान) ज्ञान की ज्योति को पकड़ा नहीं जा सकता, वह तो शून्य निराकार (सूक्ष्मपाद शरीर) तथा इस ब्रह्माण्ड को फोड़ कर आगे चली गई है। इस ज्ञान की ज्योति ने ब्रह्मा, विष्णु और सदाशिव तथा निरंजन निराकार, पाँचवी क्षर समष्टि और मूल प्रकृति का स्पष्टीकरण कर दिया है।

महाकारण) कल्पित कर इन लीलाओं को समझाया गया है।

अतः प्रथम भाग शुद्ध स्थूल में मूल अव्याकृत के स्थूल की कार्यदक्षा सुमंगला शक्ति की प्रेरक शक्ति है, जिसकी प्रेरणा द्वारा आदिनारायण की इच्छा उत्पन्न हुई और चार व्यूह * का स्थान है। शुद्ध सूक्ष्म में मूल अव्याकृत की पुरुषलीला (नित्य वैकुण्ठ) का प्रतिभास है। यहाँ मूल अव्याकृत के चारों द्वीपों सतलोक, विष्णुलोक, श्वेतद्वीप और पुष्करद्वीप का तदोगत प्रतिभास पड़ा है। इन द्वीपों के अध्यक्ष पुरुष यहाँ सौ-सौ करोड़ हंस रूपी आत्माओं के साथ आनन्द विहार करते हैं। इन अध्यक्षों का सोलह वर्षीय स्वरूप है। यहाँ के यावत् पदार्थ स्फटिक वर्ण के उज्वल हैं और यहाँ अनन्त सूर्यों का-सा प्रकाश है। यहाँ के प्रत्येक द्वीप में सौ-सौ करोड़ हंस रूपी सखियाँ

---

* वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुष स्वयम्।
अनिरुद्ध इति ब्रह्मन् मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते।।

- (भा., १२/११-२१)।

अन्वयार्थ - वासुदेवः संकर्षण = वासुदेव और संकर्षण; प्रद्युम्नः पुरुष स्वयम् =तथा प्रद्युम्न स्वयं क्षर पुरुष के; अनिरुद्ध इति ब्रह्मन् = अनिरुद्ध ऐसे ब्रह्म; मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते = स्वरूप चार व्यूह कहे जाते हैं।

भावार्थ - हे शौनकजी! स्वयं भगवान ही वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध - इन चार मूर्तिवन्त स्वरूपों में अवस्थित हैं। यसर्थ उन्हीं को चतुर्व्यूह रूप में कहा गया है।

अपने-अपने अध्यक्षों के साथ आनन्द विहार करतीं हैं।

यहाँ पर धर्मदास, कबीर और सतपुरुष❁ ये तीन स्वरूप हैं। इसके पहले आदिनारायण के स्थूल शरीर अन्तर्गत जो सात स्वरूप इन्द्र, धर्मराज, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ज्योति स्वरूप (प्रणव) और गायत्री थे, उन सबको मिलाकर यहाँ तक आदिनारायण, क्षर-पुरुष के दस स्वरूप (सुरति-प्राण) होते हैं। ये ही दस स्वरूप क्षर-पुरुष (ब्रह्माण्ड) के दस प्राण रूप हैं। जैसे हमारे पिण्ड (शरीर) में भी दस प्राण कार्यकर्ता के रूप में कार्यरत हैं। इन्हीं के द्वारा क्षर-पुरुष का सब व्यापार चलता है।

उक्त शुद्ध सूक्ष्म से परे शुद्ध कारण में गोपियों सहित श्रीराधा-कृष्ण की व्रजलीला का प्रतिभास है। अतः इस शुद्ध कारण से परे शुद्ध महाकारण में रासलीला का प्रतिभास पड़ा है। इस रासलीला में हरिदास, हित हरिवंश, वेदव्यास, गौतम, रूपसनातन, मधुसूदन, नित्यानन्द, भारद्वाज आदि श्रीकृष्ण के भक्त पहुँचे हैं। परंतु ये व्रज रास लीलायें वास्तविक नहीं

❁ महाविष्णु के आधिन सदाशिव, ईश्वर, गायत्री, प्रणव, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष, धर्मराज और इन्द्र ये जो दस सुरत हैं, वे सदा-सर्वदा हुकम के आधिन रहकर सृष्टि कार्य में संलग्न रहते हैं, जैसे हमारे शरीरस्थ दस प्राण-वायु कार्यरत हैं। अतः सदाशिव के अवतार में सतपुरुष आये हैं, ईश्वर के अवतार में कबीर आये हैं तथा शेष के अवतार में धर्मदास आये हैं।

है, क्योंकि ये अव्याकृत अंदर की प्रतिबिंब ब्रज-रास के विपरीत गुण युक्त प्रतिभासी लीलायें हैं। प्रतिभासी लीलायें होते हुए भी ये साधारण जीवों के लिए तो अति दुर्लभ, अप्राप्य हैं। यहाँ तो केवल श्री कृष्णोपासक अनन्य भक्त ही पहुँच पाते हैं - अन्य नहीं। क्षर पुरुष आदिनारायण के इस महाकारण शरीर (स्थान) को शास्त्रों में विभिन्न नामों से आदेश किया गया है। जैसे - महाविष्णु, आदिनारायण, महानारायण, आदिपुरुष, अव्यक्त पुरुष, ईश्वर, कार्यब्रह्म, सबलिक, आनन्दब्रह्म आदि-आदि ✻।

यथा -

✢ प्रधानादिविशैषान्तं चेतनाचेतनात्मकम्।
एकपादं द्विपादं च बहुपादमपादकम्।
मूर्त्तमेतद्धरे रूपं भावनात्रितयात्मकम्।।

- (विष्णु पु., ६-७-५७)

✻ क्षर पुरुष, महा-विष्णु, नारायण, ईश्वर, कार्यब्रह्म।
अव्यक्त आदिपुरुष-नारायण, सबलिक, आनन्द ब्रह्म।।

- (संतवाणी)।

✢ अन्वयार्थ - प्रधानादिविशैषान्त = प्रकृति से लेकर पाताल तक, जितने भी; चेतनाचेतनात्मकम् = चेतन - अचेतन (जड़-चेतन) रूपी आत्माएँ हैं; एकपादं =स्थूल, सूक्ष्म; बहुपादम् अपादकम् = कारण और महाकारण; मूर्तम् एतद्धरे रूपम् = मूर्त - अमूर्त दोनों ही रूप;

भावार्थ - प्रकृति से लेकर स्थूल पर्यन्त चेतना चेतनात्मक विश्व ब्रह्माण्ड, जगत्, एकपाद, द्विपाद, तीन पाद और अपाद अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण * सभी पादों की समष्टि अर्थात् जो जितना भी है, वह भगवान आदिपुरुष के त्रिगुण भावनामय है। जो त्रिगुण भावनामय है, वह सब अनित्य है, अतः इसे संसार कहते हैं। जहाँ पर गुणों का क्षोभ एवं समावेश होता है, जहाँ प्राकृत पदार्थों का उदय-लय होता है, वह सब प्रकृति का ही क्षेत्र है अर्थात् अनित्य-नाशवान् है। शेषशायी नारायण (पाताल) से लेकर आदि पुरुष - आदि नारायण (हिरण्यमय-गर्भ) तक जितने भी स्वरूपों का वर्णन

भावनात्रितयात्मकम् =भगवान क्षर पुरुष का त्रिगुणात्मक भावनामय अनित्य है।

*** इत अक्षर को विलस्यो मन, पांच तत्त्व चौदे भवन।**
यामें महाविष्णु मन मनथें त्रिगुन, ताथें थिर चर सब उतपन।।

- (प्रकाश हिं., प्र.३७/चौ.१८)।

भावार्थ - नश्वर जगत् (नारायणी सृष्टि) में कूटस्थ अक्षर के मन अव्याकृत (प्रकृति) द्वारा आदिनारायण प्रगट हुआ। उससे पाँच तत्त्व तथा चौदह लोक रूपी सृष्टि की उत्पत्ति हुई। अक्षर ब्रह्म के मनस्वरूप महाविष्णु, पुनः महाविष्णु के मनस्वरूप पाताल स्थित शेषशायी तथा शेषशायी के मन से त्रिगुण स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु, महेश उत्पन्न हुए। इन्हीं से पाँच तत्त्व तथा तीन गुण वाले स्थावर जंगम सारी सृष्टि का विस्तार हुआ।

किया है, वे सब के सब इस महाकारण स्वरूप से ही उत्पन्न हुए हैं। यह क्षर पुरुष आदिनारायण-महाविष्णु❁ अपनी मन रूपी रामत लेकर नारायणी सृष्टि रूपी जहाज के दोनों किनारे में खड़ा है। इसके एक-एक रोमकूप के छिद्रों में असंख्य त्रिदेवा

❁ (१) महाविष्णोश्च लोमनां वै विवरेषुच शौनक!
प्रतिविश्वेषु दिक्पाला ब्रह्माविष्णु महेश्वराः।।
- (ब्रह्म वै. पुराण)।

अन्वयार्थ - महाविशणोश्च लोमनां वै =महाविष्णु के जितने रोम के; विवरेषुच शौनक! =कूप (छिद्र) हैं, हे शौनक जी!; प्रतिविश्वेषु दिक्पालाः = उन प्रत्येक ब्रह्माण्ड के दिक्पाल के रूप में; ब्रह्माविष्णु महेश्वराः = ब्रह्मा, विष्णु, महेश रहते हैं।

भावार्थ - क्षर-पुरुष महाविष्णु के एक-एक लोमकूप में चौदह लोक रूपी अनेकों ब्रह्मांड लटके पड़े हैं। उन हर एक (प्रत्येक) ब्रह्माण्ड में त्रिदेवा (कार्य ब्रह्म) ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि द्वारपाल के रूप में अवस्थित हैं।

(२) महाविष्णोरेकैकरोमकूपान्तरेष्वनन्त कोटि
ब्रह्माण्डानि सावरणानि भ्रमन्तीति।
- (उपनिषद्)।

अन्वयार्थ - महाविष्णोरेकैकरोमकूपान्तरेषु =महाविष्णु के एक - एक रोम कूप के अन्दर; अनन्त कोटि ब्रह्माण्डानि =अनन्त (अगणित) करोड़ों ब्रह्मांड; सावरणानि भ्रमन्तीति = अष्टावरण सहित भ्रमण करते हैं।

भावार्थ - महाविष्णु (क्षरपुरुष) - आदिनारायण के एक-एक रोमकूप (छिद्रों) में ऐसे-ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड अष्टावरण सहित भ्रमण करते

सहित अगणित ब्रह्मांड लटके हुए हैं और अन्त समय सभी

हैं। ऐसे प्रत्येक ब्रह्माण्ड के द्वारपालरूपी त्रिदेवों की संख्या कौन निकाल सके ?

(३) तेहेतसरा से हवा लग, एक फिरस्ता खड़ा इन कद।
ए बड़का सबन का, तो पोहोंचा हवा सिर हद।।
- (मारफत सा. प्र. ३/ चौ. ५१)।

अर्थ - तेहेतसरा (पाताल) से लेकर, हवा (शून्य निराकार) एवं आदिनारायण के स्थूल पाद तक, संकर्षण व्यूह अहंकार पुरुष-शेषशायी नामक एक बड़ा विस्तार वाला फिरश्ता अष्टावरण सहित चौदह लोक को सिर पर लेकर खड़ा है, जो चौदह लोक में सबसे अग्रज-बड़ा है।

(४) इन फिरस्ते के कै सिर, सिर सिर कै मोंहों।
मोंह मोंह कै जुबान कही, ए देखो इसारत फिरस्तों।।
- (मारफत सा. प्र. ३/ चौ. ५२)।

अर्थ - इस फिरस्ते के अनेकों सिर, अनेकों मुँह और एक-एक मुँह में अनेकों जिह्वाएँ कही हैं। यह अहंकार पुरुष संकर्षण व्यूह का वर्णन है। जैसे - ''सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्''।

(५) एक इन से बड़े कहे, ऐसे जाएँ जाकी नाक में।
तो भी उने सुध न पड़े, अंदर फिरके मोहें निकलें।।
- (मारफत सा. प्र. ३/ चौ. ५३)।

अर्थ - उन 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' से भी बड़े दूसरे फिरस्ते हैं। अतः आदिनारायण-क्षर पुरुष, जिनकी नाक से अंदर जाकर घुम-फिर कर शेषशायी जैसे आदिनारायण के मुँह से निकल आयें, तो भी आदिनारायण-महाविष्णु को न सुध होगी, न खबर पड़ेगी!

लय हो जाते हैं। यथा :-

(६) विष्णु मन खेल ले खड़ा, पकड़ के दोऊ पार।
भली भांत भेलें विष्णु के, सनकादिक थंभ चार।।
- (कलश हि. प्र. २३/चौ. १४)

अर्थ - आदिनारायण - महाविष्णु अपने मन रूपी शेषशायी के साथ स्वप्निक ब्रह्मांड खेल (रामत) लेकर विराजमान (खड़े) हैं। इस क्षर ब्रह्मांड रूपी जहाज के दोनों किनार (ऊपर महाविष्णु हिरण्यमय गर्भ और नीचे पाताल में शेषशायी) में ड्राईवर रूप में आदिनारायण है, तो गार्ड रूप में शेषशायी है। इन दोनों के साथ जहाज के रक्षार्थ हेतु वैकुण्ठ भगवान विष्णु (व्यवस्थापक-पालनकर्ता) और जहाज के चारों कोनों पर चार सनकादिक धर्म के (धर्मज्ञान के) थंभ रूप हैं, जो नारायणी सृष्टि के जहाजस्थ लोगों की आँधि, तूफान, धूप, बारिश आदि से रक्षा करते रहते हैं।

(७) महाविष्णुः सहस्राणि महाशंभुः शतानि च।
नेत्रभ्रमणमेवास्य तदक्षरं परं पदम्।।
- (पद्म पुराण)।

अन्वयार्थ - महाविष्णुः सहस्राणि = हजारों क्षर-पुरुष, आदिनारायण - महाविष्णु और; महाशम्भुः शतानि च = सैकड़ों शम्भु आदिक देवादि; नेत्रभ्रमणमेवास्य = नेत्र के संचालन मात्र से ही अक्षर ब्रह्म में लय हो जाते हैं (एक पल में); तदक्षरं परं पदम् = उस अक्षर ब्रह्म के जो परमपद हैं, कूटस्थ रूप में हैं।

भावार्थ - हम लोग जिस ब्रह्मांड में वर्तमान हैं, ऐसे असंख्य अगणित ब्रह्मांड हैं। इसलिए इन ब्रह्माण्डों के हजारों महाविष्णु-आदिनारायण,

+ यत: सर्वाणि भूतानि प्रभवन्ति युगागमे।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये।।
- (श्री भागवत)।

सैकड़ों महाशंभु आदि देव और कईयों ब्रह्मांड अक्षर ब्रह्म के नेत्र संचालन (चक्षु र्निमीलेन) मात्र से लीन-नाश हो जाते हैं।

(८) नि:प्रवेशे निरालोके सर्वतस्तमसावृते।
ब्रह्माण्डमभूदेक-मक्षरस्य कारणं परम्।।
- (विष्णु पुराण)।

अन्वयार्थ - नि:प्रवेशे निरालोके = जब सृष्टि ही नहीं थी; सर्वतस्तमसावृते = सर्वत्र अंधकार ही अंधकार छाया हुआ था; ब्रह्माण्डमभूदेकम् = विश्व का परम कारण रूपी एक तेजोमय इंड प्रगट होकर; अक्षरस्य कारणं परम् = अक्षर का मन अव्याकृत, जगत - नारायणी सृष्टि का कारण बना।

भावार्थ - जब सृष्टि की रचना हुई ही नहीं थी, उस समय यत्र-तत्र सर्वत्र चारों ओर, दसों दिशाओं में अन्धकार का ही साम्राज्य था। उस वक्त सृष्टि का परमकारण रूपी एक तेजोमय अण्डा प्रगट हुआ, जिससे अक्षर का मनरूप अव्याकृत-सारी नारायणी सृष्टि का कारण बना। अत: उसी से कार्यरूपी सृष्टि खड़ी हुई।

+ अन्वयार्थ - यत: सर्वाणि भूतानि = इस विश्व के जितने भी पंचभौतिक जीव हैं; प्रभवन्ति युगागमे = इसी महाकारण स्वरूप से युग का आरंभ होता है "एकोऽहं बहुस्याम्"; यस्मिन् च प्रलयम् = यहाँ तक ही प्रलय में नाश होते हैं; यान्ति पुन: एव युगक्षये = फिर यहीं से उत्पन्न - लयादि होते रहते हैं।

भावार्थ - यहीं से युगारम्भ में सृष्टि का विस्तार होता है और युगों का क्षय होने पर इसी में ही सब समा जाते हैं।

अतः इस क्षर पुरुष की हद से ऊपर बेहद तो बयासीवाँ पक्ष है। जैसे -

पक्ष बयासिमां जो कह्या, वल्लभाचारज तहां पोंहोंचिया ।
स्यामा वल्लभी यों करी बडी दौड़, ए भी आए रहे इन ठौर।।
छेद इंड में कियो सही, पर अखंड द्रष्टे आया नहीं।
आड़ी सुंन भई निराकार, पोहोंच ना सके ताके पार।।
''इनों की तो एह सनंध, पीछे फेर पकड़्या प्रतिबिम्ब''

- (प्रकाश हिं, प्र. ३४/चौ. ६,७,८)।

अर्थ - एक सौ आठ पक्षों में इक्यासी पक्षों का लक्ष्य सतलोक वैकुण्ठ है। उसके ऊपर बयासीवें पक्ष में श्री वल्लभाचार्यजी पहुँच गए अर्थात् उन्होंने गोलोक धाम प्राप्त किया। श्याम वल्लभी (राधावल्लभी) ने इससे भी आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। फिर भी वे दोनों ज्ञानाधार अण्डाकार ब्रह्माण्ड नारायणी सृष्टि के किनार तक का ही निर्णय कर वहीं तक पहुँच सके।

ये दोनों नारायणी सृष्टि रूपी ब्रह्माण्ड को छेद कर आगे तो बढ़े, किन्तु अखण्ड भूमिका बेहद में नहीं जा सके। पुनः वापस आकर उन्होंने अव्याकृत के प्रतिबिम्ब नारायणी सृष्टि को सही ग्रहण किया। इन दोनों में से श्री वल्लभाचार्यजी इसके आगे कृष्ण लीला पकड़कर बोलोक अर्थात् बयासीवें पक्ष में पहुँचे। परन्तु श्याम वल्लभी के लीला न पकड़ पाने के कारण वे अपने ज्ञानाधार हद में ही रह गए। ऊपर बेहद में न जा सके। इन दोनों की यह हालत है। अन्य कोई भी इससे आगे नहीं जा सके।

❖ अष्टम - तरङ्ग ❖

★ महाशून्य समष्टि ★

(महाशून्य पाँचवी क्षर समष्टि, अनन्त विश्वों के स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण का इसी में लय होता है।)

क्षर पुरूष आदिनारायण से परे दसों दिशा से घेरकर शून्यों की कारण समष्टि यह महाशून्य है। जिसमें असंख्य ब्रह्मांडों का लय हो जाता है, उसे समष्टि कहते हैं। अनेक ब्रह्मांडों के असंख्य व्यापक अगणित आकाशों का लय, इस परमाकाश में होता है, अतएव इसे महाशून्य समष्टि कहते हैं।

इसे शास्त्रों में महामाया महाशून्य रूप, माया के कारण, प्रकृति, शब्दब्रह्म, मोहनिद्रा, निर्गुण, निराकार, महत्तम, अजा, परमाकाश, क्षर पुरुष आदि ÷ विविध नामों से लिखा है।

÷ महा-शून्या-माया-महत्तम,
माया के कारण-प्रकृति।
शब्दब्रह्म -मोह-निर्गुण-निराकार,
अजा परमाकाश क्षरपुरुषादि।।

- (संत वाणी)।

+ यथा सूर्योदये गेहे भ्रमन्ति त्रसरेणवः।
तथेमे परमाकाशे ब्रह्माण्ड त्रसरेणवः।।
यथा तरङ्गा जलधौ तथेमाः सृष्टयःपरे।
उत्पत्योत्पत्त्य लीयन्ते रजांसीव महानिले।।

- (योगवासिष्ठ उप.)।

भावार्थ - सूर्योदय के समय गृह में जिस तरह सूर्य किरणों में असंख्य त्रसरेणु प्रतीत होते हैं, उसी तरह परमाकाश स्वरूप (इस पाँचवी क्षर समष्टि में) में असंख्य ब्रह्माण्ड रूपी त्रसरेणु घुमते रहते हैं। अतः समुद्र की तरङ्गों की तरह उठ-उठ कर अपने इसी स्वरूप में विलीन होते रहते हैं। जिस प्रकार रजकण हवा में उड़-उड़ कर धरती में समाते रहते हैं, उसी प्रकार इस परमाकाश-महाशून्य में अगणित-संख्यातीत विश्व-ब्रह्माण्डों का उदय-लय होता रहता है। यथा -

+ अन्वयार्थ - यथा सूर्योदये गेहे = जिस प्रकार सूर्योदय के समय घर में; भ्रमन्ति त्रसरेणवः = सूर्य किरणों में घूमते हुए त्रसरेणु प्रतीत होते हैं; तथेमे परमाकाशे = उसी प्रकार परमाकाश (पाँचवी क्षर समष्टि रूपी परमाकाश) में असंख्य; ब्रह्माण्ड त्रसरेणवः = ब्रह्माण्ड रूपी त्रसरेणु घुमते रहते हैं; यथा तरङ्गा जलधौ = जिस प्रकार लहरें समुद्र में उठतीं तथा लय होतीं हैं; तथेमाः सृष्टयः परे = उसी प्रकार (पाँचवी क्षर समष्टि रूपी समुद्र में सृष्टि रूपी लहरें) उठती तथा लय होती रहती हैं; उत्पत्योत्पत्त्य = पृथ्वी में से रजकण उठते-घुमते, फिर उसी में; लीयन्ते = समा जाते हैं; रजासीव महानिले = रजकण आसमान से गिरकर पृथ्वी में ही बैठ जाते हैं।

+ संख्या चेद्रजसामस्ति न विश्वानां कदाचन।
ब्रह्मा विष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते।।

- (देवी भा., ९-३-७)।

भावार्थ - कदाच, पृथ्वी के रजकणों को गिना भी जा सकता है, पर अगणित-संख्यातीत इन विश्वों को नहीं गिना जा सकता। अतः प्रत्येक ब्रह्मांड में होने वाले अगणित ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव भी नहीं गिने जा सकते हैं। इस प्रकार से असंख्य विश्वों के असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवों का उदय-लय इस महाशून्य समष्टि के अन्तर्गत होता रहता है।

इस पाँचवी क्षर समष्टि मोहमाया शून्य के साकार-निराकार, उभय स्वरूप हैं। इसके द्वारा यथाक्रम सृष्टि का विस्तार होता है। यही विक्षेपा और आवृत्ति शक्ति का महामोहरूप महाप्रकृति है। इसके गुणों को ब्रह्म कहकर शास्त्रादि में वर्णन किया गया है। इसके मोह, अज्ञान, कर्म, कालादि अनेक नाम हैं। जैसे :-

+ अन्वयार्थ - संख्या चेद्रजसामस्ति = (चेत् रजसाम् अस्ति) पृथ्वी में रजकणों की जितनी संख्या है, उनकी संख्या (गिनकर) निकाल सकें; न विश्वानाम् कदाचन् = पाँचवी क्षर समष्टि के आगे हिरण्यमय गर्भ रूपी विश्व की संख्या निकाल नहीं सकते; ब्रह्मा विष्णुशिवादीनाम् = उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि की संख्या असंख्य, संख्यातीत होने से; तथा संख्या न विद्यते = जैसे ब्रह्माण्डों की संख्या असंख्य है, उसी प्रकार त्रिदेवादि देवों की संख्या भी असंख्य है, ये ''एक अद्वैत ब्रह्म'' नहीं हो सकते।

मोह अज्ञान भरमना, कर्म काल और शून्य।
ये नाम सारे नींद के, निराकार निरगुण।।

- (कलश हिन्दी, प्र.२४/चौ.१९)।

अलख-अगम, महाकाल और अनन्त ब्रह्माण्डों का मूल यही पाँचवी क्षर समष्टि है। आदिनारायण ने अनन्त काल पर्यन्त खोज की, तब अपने स्थान और अपने आप को जानना चाहा "जब अण्डे को फोड़कर बाहर आया" तो भी इसका पार नहीं पा सका। जिस प्रकार मनुष्य के लिए विराट पुरुष का तथा विराट के लिए आदिनारायण का पार पाना अति कठिन-दुर्लभ है, उसी प्रकार आदिनारायण हिरण्यमय-गर्भ-क्षर पुरुष के लिए भी इसका पार पाना अति दुर्लभ है। चौदह लोक विराट सहित अष्टावरण, ज्योति स्वरूप, महतत्त्व, इच्छाशक्ति तथा आदिनारायणादि (साकार ब्रह्म, निराकार ब्रह्म, प्रकृति और पुरुष) अनन्त ब्रह्माण्डों की यह महानातिमहान्-महती क्षर समष्टि है। अन्तिम महाप्रलय में इस महती-महाप्रकृति का भी नाश हो जाता है×। अतएव इसे क्षर-पुरुष माया भी कहते हैं।

× **नारायणश्च शम्भुश्च संहृत्य स्वगुणान् बहून्।**
महाद्विष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः।
महाविष्णुः प्रकृत्यां च सा चैवं परमात्मनि।।

- (ब्रह्म वै., कृष्ण जन्मखण्ड)।

अन्वयार्थ - नारायणः च = शेषशायी नारायण और; शम्भुः च = शिवजी कैलाशपति तथा; सहृत्य स्वगुणान् = समेट कर अपने-अपने

यहाँ तक स्वप्नवत् नश्वर जगत क्षर पुरुष का वर्णन किया, जो प्रलय के समय काल का ग्रास हो जाता है। इसके पश्चात् चार प्रकार के प्रलय का सूक्ष्म वर्णन किया जायेगा। उसके बाद कूटस्थ अक्षर पुरुष (ब्रह्म) के अंतर्गत विभूति स्वरूप सत्मंडल (बेहद) का वर्णन किया जायेगा।

वैभव देव; बहून् = जितने भी हैं; महाद्विष्णौ विलीनाःच = महाविष्णु - आदिनारायण में लय होते हैं और; ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः = वे सब छोटे-छोटे वैकुण्ठाधीश विष्णु; महाविष्णुः प्रकृत्याम् च = महाविष्णु में और महाविष्णु (आदिनारायण) प्रकृती पाँचवी क्षर समष्टि में; सा चैवं परमात्मानि = वह प्रकृती भी अपर प्रणव रूपी परमात्मा में लय हो जाती है।

भावार्थ - शेषशायी नारायण, विष्णु, शिव, ब्रह्मादि जितने भी वैभव देव हैं, वे सब अपने-अपने भक्तों को समेटकर महाविष्णु में और महाविष्णु (आदिनारायण) प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। वह प्रकृति भी उन परमात्मा की आँखों के कोने में लय हो जाती है। इस प्रकार महाप्रलय में व्यष्टि समष्टि सबका लय हो जाता है।

✤ नवम - तरङ्ग ✤

चार प्रकार के प्रलय ❊

शास्त्रों में प्रलय चार प्रकार के बताए गए हैं। जैसे नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक प्रलय तथा आत्यान्तिक-महाप्रलय। ये चार प्रकार के प्रलय काल के आधीक हैं, यसर्थ सर्वप्रथम काल की गिनती बताते हैं।

चारो युगों की आयुष्य मृत्युलोक की गिनती से :-

१. सतयुग की आयुष्य - १७,२८,००० वर्ष की होती है।
२. त्रेतायुग की आयुष्य - १२,९६,००० वर्ष की होती है।
३. द्वापरयुग की आयुष्य - ८,६४,००० वर्ष की होती है।
४. कलियुग की आयुष्य - ४,३२,००० वर्ष की होती है।

❊ चतुर्युगसहस्राणि दिनं पैतामहं भवेत्।
पितामहसहस्रणि विष्णोश्च घटिका स्मृता।।
विष्णोर्द्वादशलक्षाणि कलार्द्धं रौद्रमुच्यते।
रूद्रस्यार्बुदसंख्यानां ततो ब्रह्माक्षरं भवेत्।।
- (सूर्य सिद्धांत)।

अन्वयार्थ - चतुर्युग सहस्राणि = हजारों चतुर्युगी के बराबर; दिनं पैतामहं भवेत् = सतलोक स्थायी ब्रह्माजी का एक दिन होता है; पितामहसहस्रणि = ब्रह्माजी के हजार वर्ष के बराबर; विष्णोश्च घटिका स्मृता = वैकुण्ठ स्थित विष्णु जी का एक घड़ी समय होता है;

चारों युगों की आयुष्य मिलाने पर मनुष्य लोक के ४३,२०,००० वर्ष होते हैं और देवता लोक के १२,००० वर्ष होते हैं, तब उनको एक चतुर्युगी आयुष्य कहा जाता है। इस तरह एक हजार चतुर्युगी जब बीत जाती है, तब सतलोक स्थायी ब्रह्माजी का एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात्रि भी होती है। अतः मृत्युलोक के ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष बराबर सतलोक स्थायी ब्रह्माजी का एक दिन १२ घण्टा है, तो ब्रह्माजी के २४ घण्टे (दिन-रात) में तो मृत्युलोक के ८ अरब ६४ करोड़ वर्ष हुए।

विष्णोर्द्वादशलक्षाणि = विष्णु जी के बारह लाख वर्ष की आयुष्य को; कलार्द्धं रौद्रमुच्यते =रूद्र भगवान का आधा कला समय कहा गया; रूद्रस्यार्बुदसंख्यानाम् = रूद्र भगवान का दस करोड़ वर्ष व्यतीत होता है; ततो ब्रह्माक्षरं भवेत् = अव्याकृत् अक्षर का उतने समय में एक निमेष होता है।

भावार्थ - कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग ये चारों युग सहस्र बार व्यतीत हो जायें, तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है और ब्रह्माजी के इस दिन की संख्या से जब चारों युग सहस्रबार व्यतीत हो जाते हैं, तब विष्णु जी का एक घटिका समय होता है। इस प्रकार विष्णु के दिन संख्या से द्वादश लाख वर्ष व्यतीत होंगे, तब रूद्र की आधी कला होती है। रूद्र की दिन संख्या से जब दस करोड़ चतुर्युगी व्यतीत होगी, तब अपर प्रणव ब्रह्म का एक निमेष होता है। ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र-शिवादि की उम्र-काल उनकी अपनी-अपनी गिनती से १००-१०० साल है। (अतः ''ततो ब्रह्माक्षरं भवेत्'' - बेहद अव्याकृतस्थ अपर प्रणव के निमेष

<u>नित्यप्रलय</u> :-

नित्यप्रलय के विषय में शास्त्रों का कहना यह है कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मादि से लेकर संसार में जितने भी प्राणी पदार्थ हैं, उनकी बढ़ती-ढलती एवं घट-बढ़ स्थिति तथा उनमें परिवर्तन निरंतर चालू रहता है। उनमें जो नित्य क्षीणता होती रहती है, उसी को नित्य प्रलय कहते हैं।

अतः दूसरे प्रकार से देखा जाय, तो विश्व में प्राणी पदार्थों का अर्थात् ८४ लाख योनी वाले प्राणियों का नित्य निरंतर जन्म-मरण तथा नाश-वृद्धि होना ही नित्य प्रलय ❁ है।

में, ''रूद्रस्यार्बुदसंख्यानाम्'' १० लाख रूद्र (शिव) बदलते हैं। १ रूद्र के आयुष काल में २० अरब ७३ करोड़ ६० लाख विष्णु बदलते हैं। १ विष्णु के आयुष काल में २ करोड़ ३० लाख ४० हजार ब्रह्मा बदलते हैं। १ ब्रह्माजी के आयुष काल में १० लाख ८ हजार इन्द्र बदलते हैं। १ इन्द्र के आयुष काल के बराबर सतलोक स्थायी ब्रह्माजी के ५१ मिनट २५ सेकेन्ड और मनुष्य के ३० करोड़ ८५ लाख ७१ हजार ४ सौ २८ वर्ष होते हैं। १ इन्द्र के आयुष काल में ८ लाख ५७ हजार १ सौ जन्म कलियुग के मनुष्य आयु की गिनती से व्यतीत होते हैं।

❁ (१) **केचिद्रुद्रे रवौ केचित् रौद्रे शक्तौ तथापरे।**
अन्ये कर्मरता जीवा भ्रमन्ति च मुहुर्मुहुः।।

- (सनत्कुमार सं.)।

अर्थ - इस संसार में कितने मनुष्य अज्ञानवश शिवोपासना में तो कितने ही सूर्योपासना में मस्त हैं। कितने तो गौरी-गणेश को ही पूर्णब्रह्म परमात्मा मानकर उनकी ही उपासना में तल्लीन हैं। अन्य कितने कर्मकाण्ड

<u>नैमित्तिक प्रलय</u> :-

जब सतलोकस्थ ब्रह्माजी का एक दिन पूरा होकर रात्रि शुरू होती है, तब इन्द्र सहित शेषशायी श्री नारायणजी त्रिलोक को समेटकर शयन कर लेते हैं अर्थात् तीनों लोकों (स्वर्ग, मृत्यु, पाताल) का नाश हो जाता है। इन तीनों लोकों के अन्तर्गत पाताल से स्वर्ग तक दसों लोकों की सम्पूर्ण यावत् प्राणी-पदार्थों की समाप्ति हो जाती हैं।

को ही उत्तम मानकर उसी में निमग्न हैं। ऐसे अज्ञानजन्य हठग्रस्त जीव बारम्बार जन्म-मरण को प्राप्त करते ही रहते हैं।

(२) पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
इह संसारे खलु दुस्तारे, कृपयाऽपारे पाहि मुरारे।।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं[२]।।

- (चर्पट पंजरी)।

अन्वयार्थ - पुनरपि जननं पुनरपि मरणम् = बारम्बार जन्मना और बार-बार मरना तथा; पुनरपि जननीजठरे शयनम् = बारम्बार माता के गर्भ में जठराग्नि सहन करना पड़ेगा; इह संसारे खलु दुस्तारे = इस संसार के इस दुस्तर चक्कर से; कृपयाऽपारे पाहि मुरारे = श्रीकृष्ण की अपार कृपा प्राप्त किए बिना छुटकारा नहीं है।

भावार्थ - यहाँ आवागमन के चक्कर में बारबार जन्मना और बारबार मरना तथा बार-बार माताओं के गर्भ में निरंतर जठराग्नि सहन करनी पड़ेगी। ऐसे दुस्तर संसार के चक्कर से अक्षरातीत श्रीकृष्ण की अपार कृपा प्राप्त किए बिना छुटकारा नहीं मिलेगा। इसी चक्कर को ही ''नित्य

उक्त प्रलय में महर्लोक की हद-सीमा तक नैमित्तिक प्रलय का जल आ जाता है। महर्लोक का भी कुछ भाग जल में डूब जाता है। जनलोक, तपलोक और सतलोक कल्पांत (प्राकृतिक प्रलय तक) स्थायी अमरलोक कहलाते हैं। ध्रुव लोक भी इस प्रलय में कल्पांत स्थायी कहा गया है। वह भी बच जाता है।

प्राकृतिक प्रलय :-

सतलोकस्थ सृष्टि कर्ता ब्रह्माजी के वर्ष के हिसाब से जब

प्रलय'' कहा गया है।

अत:-

एष नैमित्तिक: प्रोक्त: प्रलयो यत्र विश्वसृक्।
शेतेऽनन्तासनो विश्वमात्मसात्कृत्यचात्मभू:।।

- (देवी भा. १२/८-८)।

अन्वयार्थ - एष नैमित्तिक: प्रोक्त: = इसे नैमित्तिक प्रलय कहा है; प्रलयो यत्र विश्वसृक् = जिसमें तीनों लोक स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, दस लोक नष्ट हो जाते हैं; शेतेऽनन्तासनो = अनन्तासन शेषशायी शयन करते हैं; विश्वमात्मसात्कृत्यचात्मभू: = विश्व की आत्माओं को अपने अंदर लेकर।

भावार्थ - नैमित्तिक प्रलय उसे कहा जाता हैं, जिसमें तीनों लोक स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, दस लोक नष्ट हो जाते हैं। उस वक्त पाताल से स्वर्ग तक दस लोक जल में डूब जाते हैं। दसों लोकों की आत्माओं को अपने अंदर लेकर अनन्तासन ''सहस्त्रशीर्षा पुरुष:'' शेषशायी भगवान शयन कर जाते हैं। इसी को ''नैमित्तिक प्रलय'' कहा है।

५० वर्ष हो जाते हैं, तब इतने काल को एक परार्ध कहते हैं। इस तरह दो परार्ध समय बीत जाने पर ब्रह्माजी की १०० वर्ष की आयुष्य पूरी हो जाती है। इतने समय तथा दो परार्ध समय बीतने पर ब्रह्माजी अपने मूल कारण (मूलभूत) को प्राप्त हो जाते हैं। उस समय पंचतन्मात्रा, अहंकार, अष्टावरण, ज्योति स्वरूप (व्यष्टि ज्योति) तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष आदि विराट के सभी देव तथा सूक्ष्म स्वरूप की तमाम सामग्रियाँ अपने मूल में लय हो जातीं हैं। इसी को प्राकृतिक प्रलय ❁ कहते हैं।

❁ यथा:-

प्रलयः प्रावृत्तो ज्ञेयस्तत्रादृष्टा वसुन्धरा।
जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्माविष्णुशिवादयः।।

- (देवी भा., ९/८-७२)।

अन्वयार्थ - प्रलयः प्राकृतोः ज्ञेयः = प्राकृतिक प्रलय उसे जानना; तत्रादृष्टा वसुन्धरा = सारी पृथ्वी के प्राणी जहाँ अदृश्य-नष्ट हो जाते हैं; जलप्लुतानि विश्वानि = सारा विश्व, स्थूल, सूक्ष्म के यावत् पदार्थ कारण में समा जाते हैं, जलामय-जल में डूब जाते हैं; ब्रह्माविष्णुशिवादयः = ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि भी अपने मूलभूत में समा जाते हैं, उसे प्राकृतिक प्रलय कहते हैं।

भावार्थ - प्राकृतिक प्रलय में जिस समय चौदह लोक, अष्टावरण, व्यष्टि ज्योति स्वरूप, गायत्री देवी तथा स्थूल, सूक्ष्म पाद के यावत् प्राणी पदार्थ जलामय होकर जल में डूब जाते हैं, उस वक्त ब्रह्मा, विष्णु,

आत्यांतिक महाप्रलय :-

शास्त्रों में आत्यांतिक महाप्रलय के संबंध में ऐसा लिखा है कि आत्मज्ञान द्वारा जिसका मोहात्मक बंधन छुट जाता है और उसे परमात्मा के अखण्ड स्वरूप का अनुभव होने लगता है, तब उसका आवागमन मिट जाता है। जन-जन का आत्म ज्ञान द्वारा मोहात्मक बन्धन छुटना तथा परमात्मा के स्वरूप का अनुभव करने लगना ही आवागमन मिटना है और सदासर्वदा के लिए अखण्ड पद की प्राप्त कर लेना ही आत्यान्तिक महाप्रलय है। इस तरह यह व्यष्टि प्रलय ❁ की बात हुई। इसी तरह

शिवादि देव भी अपने-अपने मूलभूत में समा जाते हैं। इस तरह स्थूल, सूक्ष्म पादों के यावत् प्राणी-पदार्थों का आदिनारायण (क्षर पुरुष) के कारण में लय हो जाना, समा जाना ही ''प्राकृतिक प्रलय'' कहलाता है।

❁ **व्यष्टि-समष्टि सृष्टि बोध :-**

आदिपुरुष-क्षर पुरुष के महाकारण मंडल में शास्त्रोक्त दो वृक्ष हैं। एक वृक्ष ऊर्ध्वमूल वाला, तो दूसरा अधोमूल वाला है। उर्ध्वमूल वाला वृक्ष समष्टि सृष्टि बोधक है, तो अधःमूल वाला वृक्ष व्यष्टि सृष्टि बोधक है। अत:

व्यष्टि सृष्टि विषय :-

(१) द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

- (मुण्डक ३, ख. १, श्लोक १)।

ब्रह्माण्ड महतत्त्व का भी नाश अविकल्प निश्चित है। इस प्रकार व्यष्टि-पिण्ड की ही तरह ब्रह्माण्ड के स्थूल, सूक्ष्म, कारण

अन्वयार्थ - द्वा सुपर्णा = दोनों पक्षी (मन और जीवात्मा); सयुजा सखाया = एक साथ रहने वाले (परस्पर सखा भाव रखने वाले); समानं वृक्षं परिषस्वजाते = एक ही शरीर रूपी पीपल के वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं; तयो: अन्य: पिप्पलम् = उन दोनों में से एक तो उस पीपल वृक्ष के सुख-दु:ख रूप कर्म फलों का; स्वादु अत्ति अन्य: = स्वाद ले-लेकर उपभोग करता है, दूसरा; अनश्नन् अभिचाकशीति = न खाते हुए केवल द्रष्टारूप में देखता रहता है।

भावार्थ - एक ही शरीर रूपी पीपल के वृक्ष का आश्रय लेकर इस वृक्ष पर दो पक्षी मन और जीवात्मा रहते हैं। ये दोनों परस्पर सखा भाव रखते हैं। इन दोनों पक्षियों में से एक तो (मन) इस वृक्ष के दु:ख-सुख रूपी कर्म के फल का मदमस्त रूप से आस्वादन करते रहता है और दूसरा पक्षी (जीवात्मा) जब तक स्वयं जागृत नहीं हो जाता, तब तक कर्मरूपी फल को न भोगता है, न खाता है, केवल द्रष्टा रूप में देखते ही रहता है।

(२) एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरस: पञ्चविधषडात्मा।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्ष:।।

- (भा., स्कन्ध १०, अ. २, श्लोक २७)।

अन्वयार्थ - एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूल: = एक घर है, उसमें दो फल तथा तीन जड़ें हैं; - चतूरस: पञ्चविधषडात्मा = चार रस हैं, इसे पाँच प्रकार से जाना जाता है, इसके छ: स्वभाव हैं; सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो = सात धातुएँ हैं, आठ आवरण हैं, नौ द्वार हैं; दशच्छदी द्विखगो

और महाकारण का भी नाश हो जाना महाप्रलय का ज्ञान गर्भित अर्थ है। जिस तरह एक व्यष्टि (एक जीवात्मा) का स्थूल, सूक्ष्मादि शरीर का नाश आत्यांतिक महाप्रलय कहा जाता है, उसी तरह जीवों को उत्पन्न करने वाला ''एकोऽहं

ह्यादिवृक्षः = दस पत्ते, निश्चय ही दो पक्षी हैं, इस अनादि वृक्ष में।

भावार्थ - यह संसार क्या है? एक सनातन वृक्ष है। इस वृक्ष का आश्रय है - एक मात्र प्रकृति। इसके -

१. प्रकृति - घर (अज्ञानरूपी निद्रा पाँचवी क्षर समष्टि, व्यष्टि में हमारे पञ्च भौतिक शरीर)।

२. फल - सुख और दुःख।

३. जड़ - तीन गुण - सत, रज, तम।

४. रस - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (हमारे चार पदार्थ)।

५. प्रकार से जाना जाता है - पाँच ज्ञानेन्द्रियों से।

६. स्वभाव हैं - पैदा होना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना, नष्ट होना।

७. धातुएँ छाल हैं - रस, रूधिर, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र।

८. शाखायें हैं - पाँच भूत - आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, मन, बुद्धि, अहंकार।

९. द्वार हैं - दो आँख, दो नासिका, मुख, दो कान, मुत्रद्वार, मलद्वार।

१०. पत्ते हैं - पान, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय।

इस वृक्ष में दो पक्षी हैं - जीव और मन।

बहुस्याम्'' कहनेवाला आदिनारायण तथा महामाया एवं पाँचवी क्षर समष्टि का विलीन हो जाना ही महाप्रलय कहा जाता है। जिस पाँचवी क्षर समष्टि * रूप महाप्रलय के अंतर्गत सगुण,

*** समष्टि सृष्टि विषय : -**

(१) ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।
- (गीता, १५/१)।

अन्वयार्थ - ऊर्ध्व-मूलम् = ऊपर की ओर है मूल (सृष्टि रूपी वृक्ष का मूल परमेश्वर कार्य सृष्टि का कारण रूप कूटस्थ अक्षर है); अधः शाखम् = क्षर पुरुष - कार्य सृष्टि के आदिपुरुष मुख्य शाखा रूप हैं; अश्वत्थम् प्राहुः अव्ययम् = संसार रूपी पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहा गया (महाप्रलय अवधि तक); छन्दांसि यस्य = जिस वृक्ष की प्रशाखा हैं - त्रिदेवादि; पर्णानि = पत्ते हैं (चौरासी लाख योनियों के जीवादि); यस्तं वेद स वेदवित् = जो पुरुष मूल (कार्य के कारण रूप अक्षर पुरुष) सहित तत्त्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला-वेदवेत्ता पुरुष है।

भावार्थ - इस अविनाशी संसार रूपी पीपल के वृक्ष की मूल-जड़ अर्थात् सृष्टि कर्ता कारण रूपी कूटस्थ अक्षर ब्रह्म तो ऊपर की ओर है। स्वप्न के स्वरूप क्षरपुरुष हिरण्यमय गर्भ इस वृक्ष की मूल शाखा हैं, जिन्होंने ''एकोऽहं बहुस्याम्'' वचनों के द्वारा इस सृष्टि का विस्तार किया। जहाँ सतलोक स्थायी त्रिदेवा-ब्रह्मा, विष्णु और शिव, इस वृक्ष की प्रशाखायें हैं, ये चौरासी लाख योनियाँ इस सनातन वृक्ष के पत्ते हैं। इस तरह जो इस वृक्ष के आदि - अंत को तत्त्वतः जानता है, वही वेद के तात्पर्य को जानने वाला वेदवेत्ता पुरुष है।

निर्गुण, निराकार, सत-असत, तमाम, स्थूल, सूक्ष्म, कारण,

चौपाई : -

(२) वैराट का फेर उलटा-मूल है आकास।
डालें पसरी पाताल में-यों कहे वेद प्रकास।।

- (सनंध, प्र. १६ / चौ. ४)।

अर्थ - चौदह लोक - इस ब्रह्माण्ड की (उत्पत्ति) गति उलटी है। इस संसार रूपी-वृक्ष का मूल स्थान याने जड़ें तो ऊपर की ओर कूटस्थ अक्षर पुरुष (ब्रह्म) में हैं तथा डालियों (त्रिदेवादि) और पत्तों (चौरासी लाख योनियों) का फैलाव नीचे पाताल की ओर है। वेदों ने इस बात की स्पष्ट उद्‌घोषणा की है।

(३) तबक चौदे देखे वेदों, निराकार लों वचन।
उनमान आगे केहेके, फेर पड़े माहें सुंन।।

- (सनंध, प्र. १७ / चौ. २५)।

अर्थ - वेदों ने चौदह लोकों तक ही नहीं, बल्कि उससे आगे निराकार तक अपने ज्ञान का प्रसार किया। परम तत्त्व की कल्पना एवं अनुमान के बल पर उन्होंने यह कहा कि ''परब्रह्म तो इससे भी परे है'', आगे है, किन्तु वह निगम है। ''मेरा गम वहाँ तक नहीं पहुँच पाता'' ऐसी सूचना देकर पुनः लौटकर शून्य और निराकार के वर्णन में खो गये।

वेदों का अनुकरण करने वालों ने यही सोचकर संतोष कर लिया कि वेद तथा ब्रह्मा की ही जहाँ दाल नहीं गली, तो हमारी दाल क्या पकेगी! ''जो मिला सोई ब्रह्म'' हुआ।

महाकारण, महाविष्णु, आदिनारायण, महाशून्य, सम्पूर्ण क्षर समष्टि अपने मूलभूत 'सदव्याकृत' में लीन हो जाती है उसे आत्यांतिक महाप्रलय * कहा जाता है।

*** नारायणश्च शम्भुश्च संहृत्य स्वगुणान् बहून्।**
महाद्विष्णौ विलीनाश्च ते सर्वे क्षुद्रविष्णवः।
महाविष्णुः प्रकृत्यां च सा चैवं परमात्मनि।।

- (ब्रह्म वै., कृ. खंड)।

भावार्थ - शेषशायी नारायण, शंभु आदि जितने भी वैभव देवादि हैं, वे सब के सब अपने लोक को समेटकर महाविष्णु-आदिनारायण में और महाविष्णु प्रकृति (पाँचवी क्षर समष्टि मोहमाया शून्य) में विलीन हो जाते हैं एवं प्रकृति (महामाया) अपने मूल स्वरूप ब्रह्म (सद् अव्याकृत) में विलीन हो जाती है। इस तरह महाप्रलय के समय व्यष्टि और समष्टि (क्षर पुरुष) का लय हो जाना, इसको भी आत्यांतिक महाप्रलय कहते हैं।

महाप्रले होसी जब लग, तब लों रेहेसी अंधेर जी।
ता कारन पीऊजी करे रे पुकार, जिन भूलो इन बेर जी।।

- (प्रकाश हिं., प्र. ३०/चौ. ३४)।

अर्थ - महाप्रलय काल तक यह अंधकारमय रात्रि और इस मायावी जगत की लीला चलती रहेगी। यसर्थ अगणित जन्म-मरण से बचाने के लिए प्रियतम आपको पुकार-पुकार कर जागृत कर रहे हैं। ऐसा सुअवसर पुनः प्राप्त करना बहुत दुर्लभ है।

श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंकावतार महामति स्वरूप ने यह निर्णय किया है कि -

आत्यांतिक महाप्रलय दो हैं समष्टि और व्यष्टि।

पाँच तत्त्व छठी आतमा, सास्त्र सबों ए मत।
यों निरमान बांध के, ले सुपन किया सत।।

- (कलश हिं., प्र. १७/चौ. ३५)।

भावार्थ - यह शरीर पाँच तत्त्वों से निर्मित है। जिस तरह से पिण्ड (शरीर) का निर्माण हुआ है। उसी प्रकार ब्रह्माण्ड भी हिरण्यमय गर्भ-नारायणी सृष्टि पाँच तत्त्व-त्रिगुणात्मक स्वप्नवत् निर्मित है, इसमें कोई विकल्प नहीं है। अतः इस पिण्ड-ब्रह्माण्ड में छट्ठी सत्ता, जो संचालक सत्ता है, उसे आत्मा माना गया है। सर्व वेद-शास्त्रों का यही मत है। इस प्रकार इस स्वप्नवत् संसार (पिण्ड-ब्रह्माण्ड) को जो साकार-निराकार रूप प्रदान किया गया है, उसे मानव ने सत्य मान लिया है, मानो यह कभी नष्ट ही नहीं होगा।

अतः जो स्वप्नवत् है, वह तो कालग्रस्त है तथा यहाँ तक महाप्रलयाधिन है, नाशवन्त् है। इसके आगे न जानने पर, स्वप्नवत् नाशवन्त् कहते हुए भी मानव ने स्वप्न को ही सत मान लिया है।

पाँच तत्त्वों का पंचीकरण पंचमहाभूत है।

आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी
काम	चलन	क्षुधा	वीर्य	अस्थि
क्रोध	वलन	तृष्णा	लोहु	मांस
लोभ	धावन	आलस्य	लार	त्वचा
मोह	प्रसारन	निन्द्रा	मुत्र	रोम
भय	आकुंचन	कान्ति	प्रस्वेद	नाड़ी

✤ दशम - तरङ्ग (अक्षर-पुरुष) ✤

अक्षर ब्रह्मणि - अव्याकृत ब्रह्म

क्षर पुरुष से परे कूटस्थ अक्षर पुरुष के चतुष्पाद में चौथा पाद अव्याकृत ब्रह्म:-

(अक्षर ब्रह्म का विभूति स्वरूप सूक्ष्म महासमष्टि)

+ एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पुरुषः।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।

- (यजुर्वेद, ३१-३)।

भावार्थ - ये सब इस पुरुष-कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के महिमा विभूति स्वरूप हैं। इनके चतुष्पाद विभूति स्वरूप में अव्याकृत, सबलिक, केवल तथा सत्स्वरूप आते हैं। अतः चौथा पाद

+ अन्वयार्थ - एतावान् = भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल में विश्वों का उदय-लय है; अस्य = इस द्रष्टा पुरुष की; महिमा = सामर्थ्य विशेष विभूति स्वरूप है, वास्तविक स्वरूप नहीं; च = और; पुरुषः = पुरुष तो; अतः = इस महिमा से; ज्यायन् = कहीं अतिशय अधिक है; अस्य = इस पुरुष की महिमा का; पादः = चतुष्पाद विभूति का चौथा पाद - अर्थात चतुर्थ पाद में; विश्वा = सम्पूर्ण विश्व और; भूतानि = प्राणीमात्र का उदय-लय है, इस पुरुष के अवशिष्ट; त्रिपाद = तीनों पाद अर्थात् त्रिपाद विभूति; अमृतम् = अमृत स्वरूप अखंड नाश रहित; दिवि = प्रकाशात्मक दिव्य रूप में नित्य अवस्थित हैं।

अव्याकृत क्षर पुरुष आदिनारायण के सृष्टि संबंधी है। नारायणी सृष्टी के सम्पूर्ण प्राणी समूह में आधारभूत होकर कूटस्थ अक्षर पुरुष का चौथा पाद अव्याकृत ही प्रतिबिंबित होता है। अक्षर के अन्य तीन पाद अखण्ड प्रकाशमय रूप से कूटस्थ अक्षर पुरुष के देश, बेहद भूमिका में ही स्थित हैं।

सर्वप्रथम, पहला पाद अव्याकृत पुरुष का स्थूल (शुद्ध प्रणव) स्वरूप है, जिसमें अनन्त क्षर पुरुष उदय-अस्त होते ही रहते हैं। उन सब में इस अव्याकृत का मन चेतन रूप से व्यापक है।

अव्याकृत पुरुष अपने चारों स्वरूपों (स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण) सहित मायावी नारायणी सृष्टि में अनेक प्रकार से बार-बार प्रविष्ट * होता रहता है।

---

* अपादग्रे समभवत सो अग्रे स्वराभरत्।
चतुष्पाद् भूत्त्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम्।।

- (अथर्ववेद, कां. १०,सू. ८, मं. २१)।

अन्वयार्थ - अपादग्रे = सृष्टि के पूर्व; सो = वह अव्याकृत पुरुष; समभवत् = अपाद अविज्ञेय रूप में रहकर; अग्रे = पूर्व का दिव्यानन्द धारण किया हुआ; स्वराभरत् = जब क्षोभ (मोह) को प्राप्त हुआ तब; चतुष्पाद् भूत्त्वा = प्रणव-ब्रह्म, काल निरंजन, अखण्ड सात शून्य और आदिपुरुष अव्याकृत से, ये सब द्वैतरूपी विश्व खड़ा किया, ये अव्याकृत स्वयं; भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् = भोक्ता-भोज्य और भोजन के रूप में व्यापक होकर पीछे सबको समेट लेता है।

अन्य तीनों ही सबलिक, केवल और सत्स्वरूप कूटस्थ अक्षर के अन्तःकरण रूप से सदा-सर्वदा प्रकाशित रहते हैं। यह भी केवल कूटस्थ अक्षर पुरुष की महिमा है। अक्षरकृत लीलाओं के कारणरूप वृत्ति भेद होने से केवल समझाने के लिए पृथक-पृथक इनका स्वरूप वर्णन किया जायेगा।

शुद्ध प्रणव ब्रह्म :- *

अव्याकृत के स्थूल पाद में शुद्ध प्रणव का स्थान है, जिसे प्रणव ब्रह्म-ॐकार का धाम कहते हैं। यह प्रणव ब्रह्म-अहंकार स्वरूप है। पाँच मुख, पन्द्रह नेत्र, दस भुजायुक्त यह अनन्त

भावार्थ - कूटस्थ अक्षर का चतुर्थ पाद-अव्याकृत पुरुष सृष्टि के पूर्व अविज्ञेय रूप में रहता था। उस वक्त सृष्टि होने से पहले वह दिव्यानन्द धारण कर स्थित था। जब वह क्षोभ (मोह) को प्राप्त होता है, तब वह स्वयं चतुष्पाद (प्रणव, काल निरंजन, सात शून्य और आदिपुरुष अव्याकृत) में विभक्त होकर यह द्वैत रूपी विश्व खड़ा करता है। पुनः सृष्टि के अन्दर भोक्ता, भोज्य तथा भोजन के रूप में व्यापक होता है तथा अंत में सबको अपने में समेट भी लेता है।

* ब्रह्मा विष्णुश्च रूद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिव।
पञ्चधा पञ्चदैवत्वं प्रणवः परिपठ्यते।।

अन्वयार्थ - ब्रह्मा विष्णुश्च रूद्रश्च = ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र तथा; ईश्वरश्च सदाशिव = ईश्वर और सदाशिव; पञ्चधा पञ्चदैवत्वम् = ये पाँचों देव तथा तन्मात्राओं के संयुक्ताकार को; प्रणवः परिपठ्यते = प्रणव कहा गया है।

भावार्थ - पाँच वेद और पाँचों तत्त्वों के अधिष्ठात्री देव ब्रह्मा, विष्णु,

सूर्यों के तेज को तुच्छ करने वाला प्रकाश पुंज अनुपम शोभा धारण किये है। इसको गीतादि में ''ओमित्यक्षर'' भी कहते हैं। अहंकार पुरुष के शास्त्रों में जितने नाम आये हैं, वे सब मुख्यत: इसी के नाम हैं। अक्षर ब्रह्म के उन्मेष-निमेष काल में उदय-लय होने वाले असंख्य विश्वों का जीव स्वरूप चेतन यही है। यहीं से प्रत्येक विश्व के लिए जीवों को भेजा जाता है। प्रत्येक विश्व के प्रलय के पश्चात् भी जीवों के एकत्रित होने का मूल केन्द्र यही है। अनंत जीवों को उत्पन्न कर पुन: अपने स्वरूप में समेट लेने में यह प्रणव ब्रह्म ही सामर्थ्यवान है। यथा -

'असंख्य मूर्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरत:'

- (मनु, १२-१५)।

अर्थ - इस प्रणव के स्वरूप में से असंख्य जीवों के स्वरूप निष्पन्न (उत्पन्न) हुआ करते हैं तथा अनेक क्षर ज्योति स्वरूपों का लय भी इसी में आकर हो जाता है।

प्रणव ब्रह्म के ज्ञान-अज्ञान भेद से दो स्वरूप हैं।

अज्ञानमय प्रणव :-

यह मूलत: स्वप्नावस्था का स्वरूप है और महाशून्य के सिर पर विराजमान है। यह असंख्य सूर्यों का-सा स्वत: प्रकाश रूप है। यह स्वयं शुद्ध अहंकार रूप है और इसकी बायीं ओर

रूद्र, ईश्वर और सदाशिव का संयुक्त स्वरूप ही प्रणव ब्रह्म (अपर प्रणव, मूल ज्योति स्वरूप) है।

प्रणव-ज्योति स्वरूप की मनोरूपा रोधिनी शक्ति ❁ है। यह जगत के अनधिकारी जीवों को इस अपर प्रणव धाम से आगे जाने नहीं देती। यह पन्द्रह दिन साकार और पन्द्रह दिन निराकार रहा करती है। जब जगत का उदय होता है, तब यह साकार (व्यक्त) स्वरूप में रहती है और जब सृष्टि का अस्त

❁ (१) प्रकृतिर्या समाख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी।
पुरुषश्चाप्युभावे तौ लीयेते परमात्मानि।।
- (विष्णु पु., अ. ६-४-३०)।

अन्वयार्थ - प्रकृतिर्या = इस प्रकृति स्वरूप मनोरूपा रोधिनी शक्ति के; समाख्याता = दो समान भाव कहे गये हैं; व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी = व्यक्ताव्यक्त साकार और निराकार स्वरूप में रहती है; पुरुषःचाप्युभावेतौ = प्रतिबिंबित होनेवाला पुरुष प्रणव है, जो प्रतिबिंबित होकर नीचे आदिनारायण-महाविष्णु बन जाता है; लीयेते परमात्मानि = जब प्रकृति-पुरुष नाश हो जाते हैं, तो यह अपनी माया सहित परस्वरूप-अपरब्रह्म (मूल ज्योति स्वरूप) रूप परमात्मा में लीन हो जाता है।

भावार्थ - इस प्रकृति स्वरूप मूल ज्योति स्वरूप, अपर प्रणव ब्रह्म की 'मनरूपा रोधिनी शक्ति' के व्यक्त (साकार) अव्यक्त (निराकार) दो स्वरूप हैं। इस जगत में प्रतिबिम्बित होने वाला पुरुष प्रणव ब्रह्म है, जो प्रतिबिम्बित होकर आदिनारायण-महाविष्णु बन जाता है। जब यह प्रतिबिम्बित नहीं होता, तो अपर प्रणव के रूप में रहता है। जब प्रकृति पुरुष नाश को प्राप्त हो जाते हैं, तो अपनी पाँचों मात्राओं सहित अपने परमात्मा स्वरूप में लय हो जाते हैं।

(महाप्रलय) हो जाता है, तब यह भी निराकार हो जाती है एवं प्रणव ज्योति स्वरूप में ही लय हो जाती है। अस्तु -

क्षर पुरुष के अन्तर्गत स्थूल पाद में अष्टावरण के ऊपर जिस नाद स्वभाव प्रणव ब्रह्म (व्यष्टि ज्योति स्वरूप) का वर्णन हो आया है; वह इसी का प्रतिबिंबित स्वरूप है। उसके जितने नाम बताये गये हैं; वास्तव में वे सभी नाम इसी के हैं। पुनः

(२) त्वमेवाद्या सृष्टिविधौस्वेच्छया त्रिगुणात्मिका।
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणास्वयम्।।

- (ब्रह्म वै. पु., प्र. खं.)।

अन्वयार्थ - त्वमेवाद्या = ये ही (रोधिनी शक्ती) सृष्टि के शुरू में; सृष्टिविधौ = सृष्टि की रचना करती है; स्वेच्छया = अपनी इच्छा मात्र से; त्रिगुणात्मिका = त्रिगुणमय होकर; कार्यार्थे सगुणा त्वम् = कार्य करने के वक्त यही साकाररूप हो जाती है, परंतु; वस्तुतो निर्गुणास्वयम् = वास्तव में यह स्वयं सदा निर्गुण अव्यक्त स्वरूप में रहती है, वही मनोरूपा रोधिनी शक्ती है।

भावार्थ - यह रोधिनी शक्ति स्वेच्छा मात्र से त्रिगुणात्मिका होकर सृष्टि रचती है। जब यह सृष्टि रचती है, तब साकार रूप धारण कर लेती है। वास्तव में वह स्वयं सदा निर्गुण-अव्यक्त स्वरूप में रहती है। इस प्रकार इन उभय स्वरूपों को धारण करने वाली यह "मनोरूपा रोधिनी शक्ति" महानातिमहान अति प्रबल शक्ति है। यह रोधिनी 'मूल प्रकृति' सुमंगला शक्ति की कला मात्र का प्रतिनिधि स्वरूप है।

यहाँ प्रणवाकाश (प्रणव धाम) में पाँच स्थान ❋ हैं, उनमें से अपर प्रणवाकाश में तीन और पर प्रणवाकाश में दो स्थान हैं।

अत: यहाँ अज्ञानमय अपर प्रणवाकाश के अंदर दायीं ओर तीन स्थान हैं। १. शुद्ध स्थूल २. शुद्ध सूक्ष्म और ३. शुद्ध कारण।

शुद्ध स्थूल में :- 'अ' कार मात्रा, ऋग्वेद, ब्रह्मा देवता, पृथ्वी तत्त्व, गार्हपत्याग्नि का सूक्ष्मतम रूप है।

शुद्ध सूक्ष्म में :- 'उ' कार मात्रा, यजुर्वेद, विष्णु देवता, जल तत्त्व, दक्षिणाग्नि का सूक्ष्मतम रूप है।

❋ ऋग्वेदो गार्हपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च।
आकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः।।
यजुर्वेदोऽन्तरिक्ष च दक्षिणाग्निस्तथैव च।
विष्णुश्च भगवान्देव उकारः परिकीर्तितः।।
सामवेदस्तथा द्यौश्चाऽऽहवनीयस्तथैव च।
ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः।।
अर्धमात्रा परा ज्ञेया तत ऊर्ध्वं परात्परम्।

- (ब्रह्मविद्या उ.)।

अर्थ - ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी तत्त्व, ब्रह्मा देवता इन सबकी उत्पत्ति अकार मात्रा से मानी गई है। यजुर्वेद, अन्तरिक्ष, दक्षिणाग्नि, विष्णु भगवान इन सबकी उत्पत्ति उकार मात्रा से हुई है। सामवेद, द्यौ (तेज तत्त्व) आकाशस्थ द्युलोक, आह्वनीय अग्नि, ईश्वर (शिव) देवता

शुद्ध कारण में :- 'म' कार मात्रा, सामवेद, रूद्र देवता, अग्नि तत्त्व, आह्वनीय अग्नि का सूक्ष्मतम रूप है।

ज्ञानमय प्रणव :-

इस अज्ञानमय अपर प्रणव से परे ज्ञानमय पर प्रणव धाम है, जिसमें दो स्थान हैं। १. शुद्ध महाकारण और २. निर्मल चेतन।

१. शुद्ध महाकारण में :- '˘' अर्धमात्रा, गायत्री शाक्ति, अथर्ववेद, ईश्वर देवता और वायु तत्त्व का सूक्ष्मतम रूप है।

२. शुद्ध निर्मल चेतन में :- '·' बिंदु मात्रा, स्वसंवेद, सदाशिव देवता और आकाश तत्त्व का सूक्ष्मतम रूप है।

ज्ञानशक्ति गायत्री :-

अपर प्रणव में माया का बीज है और पर प्रणव में विशुद्ध चेतन है, जिसे निर्मल चेतन भी कहते हैं। यही ज्ञानशक्ति गायत्री का धाम है। अतएव इस गायत्री धाम की यावत् सामग्रियाँ निर्मल स्वरूप मानी गई हैं। यद्यपि यहाँ पर प्रणव का ही आधिपत्य है, तथापि ज्ञान की विशेषता के कारण इसे गायत्री शक्ति का धाम कहते हैं। इस धाम की परदेवता गायत्री शक्ति मानी गई हैं।

इन सबकी उत्पत्ति मकार मात्रा से हुई है। अर्ध मात्रा परा वाणी रूप है। उससे उत्पन्न जो चन्द्राकार शून्य है, वही ब्रह्मविद्या रूप है। इस प्रकार

यथा :-

+ तदायुधधरा देवी गायत्री परदेवता।
वेदाः सर्वे मूर्तिमन्तः शास्त्राणि विविधानि च।।
स्मृतयश्च पुराणानि मूर्तिमन्ति वसन्ति हि।
ये ब्रह्मविग्रहाः सन्ति गायत्री विग्रहाश्च ये।।
व्याहृतीनां विग्रहाश्च ते नित्यं तत्र सन्ति हि।

- (देवी भा. १२-११-८६,८७)।

भावार्थ - इस प्रणव धाम में परदेवता के रूप में ज्ञानशक्ति गायत्री विराजमान हैं, जहाँ पर "अनन्ता वै वेदाः" अनन्त मंत्र राशि वेद, असंख्य शब्द राशि शास्त्र, पुराण सब मूर्तिमन्त ज्ञानस्वरूप विद्यमान हैं। यहीं पर 'स्वसंवेद' और 'अथर्ववेद' मूर्तिवत् विराजमान हैं। जगत में जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद

प्रणव और गायत्री के द्वारा सब प्राप्त होता है, ऐसा लिखा है।

+ अन्वयार्थ - तदायुधधरा देवी = जिस (प्रणव धाम) में शस्त्रादि धारण की हुई देवी; गायत्री परदेवता = गायत्री परदेवता (अधिष्ठात्री) के रूप में विराजमान है; वेदाः सर्वे मूर्तिमन्त = "अनंत वै वेदाः" अनन्त मंत्र राशि वेद; शास्त्राणि विविधानि च = अनन्त शब्दराशि, शास्त्र और; स्मृतयश्च पुराणानि = तमाम् पुराण; मूर्तिमन्ति वसन्ति हि = ज्ञानरूप मूर्तिमान (स्वरूप) विराजमान है; ये ब्रह्मविग्रहाः सन्ति = ये सभी ब्रह्म स्वरूप हैं और; गायत्री विग्रहाश्च ये = यह गायत्री स्वरूप भी ब्रह्म स्वरूप में है; व्याहृतीनां विग्रहाश्च = अव्यक्त अखण्ड स्वरूप में यहाँ; ते नित्यं तत्र सन्ति हि = यहाँ ये सब नित्य निरंतर निश्चित रूप में रहते हैं।

और अथर्व संहिता के नाम से प्रसिद्ध हैं, वे इस वेद संहिता से भिन्न हैं। वहाँ का अथर्ववेद इन सभी वेदों का परात्मस्वरूप है और स्वसंवेद तो कार्य-कारणवश तारतम ज्ञान का द्योतक होने से स्वयं ब्रह्ममुनियों के साथ ही आया है। यथा -

तीनों वेदों ने यों कहा, वेद अथर्वन् सबको सार।
येही वेद कुली में आखर, त्रिगुण को उतारे पार।।

- (किरंतन, प्र. ७३/चौ. ३२)।

भावार्थ - तीनों वेदों ने यह स्पष्ट घोषणा की है कि अथर्ववेद ही सभी ज्ञानों तथा बोधों का सार तथा आत्मज्ञान का द्योतक है। यही वेद कलियुग के अंतिम चरण में आत्मज्ञान के आधारभूत ब्रह्मबोध रूपी ज्ञान की साक्षी देगा। अत: जीव-ब्रह्म के विवेचनात्मक ज्ञान द्वारा सभी सृष्टियों सहित त्रिगुण स्वरूप त्रिदेवादि को भी नश्वर प्रपंच रूपी दायित्व से मुक्त कर, उन्हें पार-अविनाशी बेहद भूमिका में पहुँचायेंगे।

आदिनारायण के स्थूल में जिस गायत्री शक्ति का वर्णन आया है, वह इस गायत्री का ही प्रतिबिंब है। इस गायत्री शक्ति के निर्मल चेतन स्थान की बायीं ओर जो स्थान है, उसे सम्पूर्ण जीवों के उत्क्रम से पहली और ऊपर से आठवीं मुक्ति का स्थान ❋ कहते हैं, जिसे वेदों की भाषा में 'जग्जीवों की मुक्ति

❋ आद्य सृष्टि से लेकर आज तक जितने भी त्रिकालदर्शी अवतार, पैगम्बरादि हुए, उनकी भविष्य वाणी के अनुरूप अट्ठाइसवें कलियुग के निष्कलंकावतार बुद्ध-कल्कि (रूह-अल्लाह-इमाम मेहंदी) स्वरूप महामति

का स्थान' और कुरान की भाषा में 'आम खलक बहिस्त' कहते हैं। इस मुक्ति स्थान का सुख अखण्ड सच्चिदानन्दमय तो है ही, पर नश्वर स्वर्ग-वैकुण्ठादि के सुखों के आगे कितने गुना बढ़ता ❀ सुख है, उस भिस्त के सुख का ईशारा-इंगित मात्र कर सकते हैं। पाँचों वेद यहाँ पर अव्यक्त रूपेण नित्य

श्री प्राणनाथजी ने प्रगट होकर सबकी जन्म-जन्मान्तर से करते आए साधना पथ की मनोकामनाओं को पूर्ण कर दिया। जैसे :-

मात हुई मात चाहते, बुध बाबा आलम।
मन चाह्या सब को दिया, अरस रूहों के खसम।।

- (सनंध, प्र. ३७/चौ.७८)।

भावार्थ - आद्य सृष्टि के शुरुआत से सृष्टि के मूल-गायत्री मंत्राधार, गायत्री माता के भक्तों को गायत्री धाम के स्थान में उतक्रम से प्रथम जग्जीवों की मुक्ति स्थान (आम खलक बहिस्त) बकसीस (पारितोषिक) रूप में दिया। इस तरह संपूर्ण सृष्टि (आलम) के बुद्धियों के बाबा (अक्षर की जागृत बुद्धि) ने अवतार लेकर ब्रह्मात्माओं के धाम-धनी की आज्ञा से सबको मनचाहा फल-अखण्ड अविनाशी स्थान प्राप्त करा दिया।

❀ (१) कै कोट राज वैकुण्ठ के, न आवे इतके खिन समान।
सो जनम बृथा जात है, कोई चेतो सुबुध सुजान।।

- (किरंतन, प्र. ७८/चौ.२)।

भावार्थ - वैकुण्ठ के सुख का करोड़ों गुना सुख, बेहद के उतक्रम से प्रथम मुक्ति स्थान (आम खलक बहिस्त) के एक क्षण (निमेष) के सुख के तुल्य नहीं आ सकता। ऐसा सुख प्राप्त करने हेतु मिला यह शुभातिशुभ

निवास करते हैं तथा वे यहीं से आदिनारायण-क्षर पुरुष के स्थूल (नाद स्वभाव) में होते हुए शेषशायी नारायण के श्वास-प्रश्वास द्वारा जगत में स्थूल रूप से व्यक्त हुए हैं।

अवसर अर्थात् यह मानव जन्म व्यर्थ ही (बिना विवेक-विचार किए) बीता जा रहा है। हे आत्माओं! इतना तो याद रखो कि तुम सब चतुर, विलक्षण और निजात्मोद्वारक सुबुद्धिवाली हो। अतः इस कलिकाल में सुलभ बेहद के उत्तरोत्तर विभिन्न प्रकार से प्राप्त होनेवाले सुखों के विषय सचेत हो जाओ।

(२) पैगंमरों भिस्त तीसरी, जिनों दिए हक पैगाम।
चौथी भिस्त जो होयसी, पावे खलक जो आम।।

- (खुलासा, प्र.५/चौ.१५)।

भावार्थ - तीसरी नवस्थापित बहिस्त उन अवतारी पुरुषों और पैगम्बरों की होगी, जिन्होंने संसार को परब्रह्म का संदेश देकर एकेश्वर की उपासना का उपदेश दिया था और चौथी नवस्थापित बहिस्त अवश्य ही आम जीवों के लिए होगी क्योंकि 'धनी बड़े कृपाल' हैं।

इस बहिस्त में महाप्रलय की अवधि तक के कर्मकाण्ड में कर्मरत लोग (काष्ट भखीजन), विभिन्न नरकों में जलने वाले नारकी, आत्मब्रह्म, परलोक विषयक आस्था से रहित नास्तिक लोग जायेंगे। इन तीनों जमात के सिवाय एक अन्य जमात अभी से (वि. सं. १७३५ से) जा रही है, जो तारतम प्राप्त करके, प्रणामी बनकर पाताल से लेकर अक्षरातीत तक की जानकारी-समझ प्राप्त कर लेने पर भी, आद्य सृष्टि के मूल गायत्री मंत्र द्वारा गायत्री माता (गायत्री देवी) को जन्म जन्मान्तर से भजते आने के कारण तथा अपने पूर्व संचित धर्म संस्कारों के कारण गायत्री माता को

✶ अव्याकृत के सूक्ष्मपाद में स्थित ✶

(काल निरंजन)

अव्याकृत के अन्तर्गत चतुर्थ पाद-स्थूल में प्रणव ब्रह्म तथा गायत्री से परे सूक्ष्म (विद्यापाद) में काल निरंजन का स्थान है। शास्त्रों में इसे निरंजन पुरुष, काल पुरुष, काल निरंजन, काल भगवान, निरंजन शक्ति, महाकाल, महारूद्र, महतत्त्व आदि-आदि नामों से उल्लेखित किया गया है। अथर्ववेद में इसे निम्नोक्त प्रकार कहा है। यथा:-

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो हि सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः।।

- (अथर्ववेद)।

पुनः महाभारते:-

**✣ कालः कर्ता विकर्ता च सर्वमन्यदकारणम्।
नाशं विनाशमैश्वर्यं सुखं दुःखं भवाभवौ।।**

- (महाभारत, शा. पर्व)।

छोड़ नहीं पाते। अतः ऐसे प्रणामीजनों को ''मात हुई मात चाहते'' उनके किस्मत के फलस्वरूप माता ही प्राप्त करा दी गई।

✣ अन्वयार्थ - कालः कर्ता विकर्ता च = काल ही करता है और वही बिगाड़ता भी है और; सर्वमन्यदकारणम् = अन्य सबका कार्य-कारण रूप यही है; नाशं विनाशमैश्वर्यम् = नाश-विनाश, ऐश्वर्यादि; सुखं दुखं भवाभवौ = दुःख-सुख, जन्म मरणादि सब इसी के द्वारा मिलते हैं।

भावार्थ - यह काल ही कर्ता है, यही बिगाड़ता है, यही नाश विनाश करता है। दुःख, सुख और ऐश्वर्य सब इसी के द्वारा मिलते हैं। इसके सामने इसके सिवाय किसी का जोर-बल नहीं चलता। यही काल विश्व में व्यापक हो रहा है। यह अग्नि की भाँति सबको समेट कर स्वयं भी अंतर्हित हो जाता है।

इसके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत नामक तीन स्वभाव हैं।

१. अध्यात्म के साथ :- चौबीस हजार शक्तियों सहित सुमना शक्ति रहती है। इसका स्वभाव इच्छा, क्रिया और ज्ञान है।

२. अधिदैव के साथ :- चौबीस हजार शक्तियों सहित विद्या और ब्रह्मविद्या नाम की दो शक्तियाँ रहती हैं। इसका स्वभाव आवर्ण, विक्षेप और काल है।

३. अधिभूत के साथ :- चौबीस हजार शक्तियों के साथ दस महाविद्या और ब्रह्माणी शक्ति रहती हैं। इसका स्वभाव असत्, जड़ और दुःख है।

इस प्रकार यहाँ अव्याकृत के सूक्ष्म स्थान में बहत्तर हजार मूल शक्तियाँ हैं। इनमें से प्रत्येक के तीन-तीन स्वभाव उपरोक्त प्रकार से हैं।

यही ७२००० शक्तियाँ ब्रह्माण्ड के पिण्डों में ७२००० नाड़ी रूप में हैं। इन्हीं शक्तियों के स्वतः प्रभाव से यह काल निरंजन शक्ति अत्यंत प्रबल-प्रचण्ड मानी गई है। असंख्य ब्रह्माण्ड के

जीवों का यह महाकालरूप है। अतः सभी जीव यहीं आकर लीन हो जाते हैं। यही शक्ति अनेक ब्रह्माण्डों का नाश भी करती है और उन्हें अपने में समेट भी लेती है। असंख्य ब्रह्माण्ड के जीवों का यही 'ब्रह्म' * है। आदिनारायण का सूक्ष्म-मोहतत्त्व इसी का प्रतिबिंब है। उसके जितने नाम गिनाए गए हैं, वे सभी मूलतः इसी के नाम हैं। यहाँ इसका निजस्वरूप मन, वचन और दृष्टि से परे निर्विशेष तथा अत्यन्त सूक्ष्म सुरता रूप में है। अतः इसे ''नित्यं वाङ्मनसः परम्'' कहा है। यह यहाँ अखण्ड के दरवाजे पर चौकी रूप है। यह किसी अनधिकारी जीव को अखण्ड में (यहाँ से आगे) जाने नहीं देती है।

अक्षर ब्रह्म की पंचवासनाओं का शाला रूप स्थान भी यही है। लीला भेद से इसमें भी चार स्थान हैं। जैसे -

१. स्थूल में - इस काल निरंजन की निजलीला है और यह पंचवासनाओं का शाला रूप स्थान भी है।

२. सूक्ष्म में - अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव इन तीनों का लीला है।

---

* (१) काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो हि सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः।।

- (अथर्ववेद)।

अन्वयार्थ - काले तपः काले ज्येष्ठम् = काल (निरंजन शक्ति) ही तप है और काल ही आद्य ईश्वर स्वरूप है; काले ब्रह्म समाहितम् = काल में ही ब्रह्म का समावेश है; कालो हि सर्वस्येश्वरः = काल ही सभी-यावत्

३. कारण में - नित्य गोलोक (अखण्ड व्रज) का प्रतिभास है।
४. महाकारण में - नित्य वृन्दावन (अखण्ड रास) की लीला का प्रतिभास है। इति -

✶ अव्याकृत के कारण में स्थित ✶

"सात महाशून्य"

सूक्ष्म स्थान काल निरंजन से परे इस अव्याकृत के तृतीय पाद-कारण में अखण्ड सात महाशून्यों का विस्तार है। ये सातों शून्य सात रंग में विद्यमान है। यहाँ पर वास्तवी, अनिर्वचनीय, तुच्छा, शिवकल्याणी और उन्मुनी ये पाँच शक्तियाँ अधिष्ठात्री रूप से विराजमान हैं। प्रत्येक शून्य में विभिन्न प्रकार के स्वर उठा करते हैं। अतः इसे माया और ब्रह्म दोनों नामों से लिखा है। ये कारण रूप से माया और चेतन रूप से ब्रह्म कहे जाते हैं। जिस प्रकार आदिपुरुष के कारण में इच्छाशक्ति के दो रूप (इह रूप-माया भाव और अनिह रूप-ब्रह्म भाव) हैं, उसी प्रकार इसके भी दो स्वरूप हैं। इच्छाशक्ति को इसी का प्रतिबिम्ब

पदार्थों का ईश्वर रूप है; यः पितासीत् प्रजापतेः = काल, जो जगत पिता ब्रह्माजी का भी पिता है।

भावार्थ - सारी सृष्टि रचना की शक्ति-सामर्थ्य इसी काल-निरंजन पुरुष में है। इसी काल पुरुष के अन्तर्गत सृष्टि के अग्रज, सबसे ज्येष्ठ हिरण्यमय गर्भ नामक आदिपुरुष की वर्तमान उपस्थिती है। इसी अधिष्ठाता स्वरूप काल निरंजन पुरुष के अन्तर में सम्पूर्ण वेदों का बीज रूप है। यह

स्वरूप माना गया है।

ये सात शून्य अखण्ड हैं तथा ये ही अप्रकाशिका योगमाया तथा कालमाया जगत के बीजभूत कारण स्वरूप है। अजपा जाप की गति यहीं तक है। आदिनारायण-क्षर पुरुष के स्थूल में जिन सात स्वरूपों-इन्द्र, धर्मराज, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ओंकार (व्यष्टि ज्योति स्वरूप) तथा गायत्री का वर्णन हो आया है, उन सबका यही बीजभूत जीव है। इसी शून्य मंडल से एक कमल-तन्तु के सदृश चिदाभास की सूक्ष्म शिखा का एक सूत्र ऊपर की ओर चला गया है और महाकारण मण्डल के सूक्ष्म में जो चार द्वीप हैं, उनसे जा मिला है। इस धाम (कारण-सात शून्य) से आगे जानेवाले मुक्त पुरुषों का यह पथप्रदर्शक बन जाता है। विश्व में जितने भी रंग-राग प्रतीत होते हैं, उन सबका केन्द्र यही है। इसके (कारण शरीर सात शून्य) बायीं ओर उतक्रम से गिनने से आचार्यों (ऋषि-महर्षियों की) की दूसरी

जगत का ईश्वर भी है तथा यही काल पुरुष जगतकर्ता (पिता) ब्रह्माजी का जनक भी है।

(२) पेड़ काली किन ना देखी, सब छाया ही में रहे उरझाए।
गम छाया की भी ना पड़ी, तो पेड़ पार क्यों लखाए।।

- (सनंध, प्र.५/चौ.२१)।

भावार्थ - अंधकार के समान पूर्ण, काल ही माया रूपी वृक्ष है, जिसके मूल-'काल निरंजन' को किसी ने नहीं देखा। उसकी छाया या मोहतत्त्व में ही सब उलझे हुए हैं। जब मोहतत्त्व का ही पार नहीं पा सके, तब उसके मूल या पार की सुध कैसे हो?

मूक्ति * का स्थान तथा कुरान की भाषा में पैगम्बरी बहिस्त है। इति -

✶ अव्याकृत का महाकारण ✶

- (अर्थात् सबलिक का स्थूल) ।

पूर्व वर्णित सात महाशून्य मण्डल से परे, अव्याकृत का महाकारण स्वरूप अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसे सबलिक का स्थूल भी कहा जाता है। लीला भेद से इस महाकारण में चार स्थान हैं - शुद्ध स्थूल, शुद्ध सूक्ष्म, कारण तथा शुद्ध महाकारण।

शुद्ध स्थूल में :-

१. सुमंगला शक्ति :- अव्याकृत के महाकारण मण्डल के

---

* सुंन चाही तिन सुंन दई, भिस्त चाही तिन भिस्त।
नूर चाह्या तिन नूर दिया, यूं पाई अपनी किस्त।।

- (सनंध, प्र. ३७/चौ. ७७)।

भावार्थ - शून्य प्राप्ति के साधक भक्तों (निराकारवादियों) को शून्य अर्थात् बेहद स्थित अव्याकृत के कारण में ऋषि-महर्षियों की मुक्ति स्थान (पैगंम्बरी बहिस्त) नामक स्थान में मुक्ति दी। पुनः भिस्त चाहनेवाले साकारवादियों के लिए अव्याकृत के महाकारण मण्डल के सूक्ष्म में स्थित नित्य वैकुण्ठ (मलकूती बहिस्त) का द्वार मुक्ति स्थान के रूप में खोल दिया। नूर-अक्षरधाम की इच्छुक ईश्वरी सृष्टि के लिए अक्षरधाम तथा उनके इष्ट के धाम का द्वार खोल दिया। इस तरह संपूर्ण जीवों को उनकी साधना के अनुरूप किस्मत का फल प्राप्त करा दिया।

शुद्ध स्थूल में परम कार्य दक्षा सुमंगला शक्ति-परम प्रबल पंचशक्ति युक्त रहती है। जैसे - ब्रह्म स्वरूपा व्यापिका, शिव स्वरूपा संहारिका, विधि शक्ति उद्‌गारिका, विष्णु शक्ति पालिका तथा सर्व कारणों की कारण रूपा सद्रूपा शक्ति युक्त ''सुमंगला शक्ति'' है। उक्त पाँच शक्तियों को पंचशिव भी कहते हैं। यथा - परम शिव, ब्रह्म शिव, सदा शिव, नाद शिव और शिव ये पाँच शिव हैं। इनमें से चार शिव, शक्तियों के चार पाये रूप और एक शिव बुनाव रूप है। इस प्रकार एक विशाल मंच कल्पित करके पाँचवी शक्ति सद्रूपा माया, सर्व विश्वोत्पत्ति लय की मूल कारणभूता सुमंगला शक्ति ✽ उस पर विराजमान है। सबलिक ब्रह्म के सूक्ष्मपाद में जो चिदानन्द लहेरी है, उसी की कार्य स्वरूप यह सुमंगला शक्ति है।

अत: यह सुमंगला चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म की सत्स्वभाव

✽ कूटस्थस्य हृदयाकाशात्प्रादुर्भूता सुमङ्गला।
निद्रामुत्पादयामास महामोहमयीं दृढ़ाम्।।

- (पुराण संहिता)।

अन्वयार्थ - कूटस्थ हृदयाकाशात् = कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के हृदयाकाश से; - प्रादुर्भूता सुमङ्गला = सुमंगला नामक शक्ति ने प्रगट होकर; निद्रामुत्पादयामास = भ्रमित करने वाली निद्रा को प्रगट किया; महामोहमयीं दृढ़ाम् = जो निश्चय ही मोहमयी है।

भावार्थ - कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के हृदयाकाश से सुमंगला नामक शक्ति ने प्रगट होकर महामोहरूपी निद्रा को प्रगट किया।

रुपिणी है अर्थात् उनकी सुरता रूप एक महान् विद्याशक्ति है। इसका मूल स्थान तो सबलिक के सूक्ष्म स्वरूप चिदानंद लहेरी में है, परन्तु जब यह सर्ग-स्थिती-लयरूप विश्वोत्पादन कार्य में प्रवृत्त होती है, तब अव्याकृत पुरुष के इसी स्थूल स्थान में उपरोक्त प्रकार से सुमंगला नाम धारण करके आ विराजती है।

शुद्ध सूक्ष्म में :-

यहाँ सत्स्वरूप की लीलाएँ हैं। यह चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म के बाल स्वभाव का स्वरूप है। इस स्थान में चार द्वीप प्रकाशित रूप में स्थित हैं, जो अनेक आत्माओं के मुक्त होने का धाम रूप हैं। चारों द्वीपों के भिन्न-भिन्न नाम इस प्रकार हैं, जैसे - विष्णुलोक, सतलोक, श्वेतद्वीप और पुष्करद्वीप। इस प्रकार ये चारों द्वीप अव्याकृत के महाकारण मण्डल के शुद्ध सूक्ष्म पाद में नेत्र के समान प्रकाशित हैं। इन चारों का संयुक्त नाम ही "नित्य वैकुण्ठ" है। इसी के बायीं ओर उतक्रम से तीसरी ❋ नित्य वैकुण्ठ (मलकूती बहिस्त) की मुक्ति का स्थान है।

❋ तिन भिस्त हाल चार का बेवरा, एक मलकूती भिस्त।
दो भिस्त अव्वल लैल में, चौथी महंमद आए जित।।

- (खुलासा, प्र.५/चौ.१२)।

भावार्थ - आदिकाल से उपस्थित चार बहिस्तों का विवरण इस प्रकार है। पहले बहिस्त का नाम मलकूत या नित्य वैकुण्ठ धाम है, जो अव्याकृत के महाकारण मण्डल के सूक्ष्म चार द्वीप के बायीं ओर है। दो बहिस्तें

अत:- विष्णुलोक = रामोपासक अपने इष्ट के धाम को साकेत धाम, सान्तानिक लोक, अखण्ड अयोध्या आदि नामों से संबोधित करते हैं।

सतलोक = कबीर मतवाले इसे सतलोक, अमरलोक, हंसलोक, अलख पुरुष का धाम आदि नामों से उल्लेख करते और पुकारते हैं।

श्वेतद्वीप = वैष्णव जन इसे श्वेतद्वीप, वैकुंठ धाम, विष्णुलोक आदि नामों से पुकारते-सम्बोधित करते हैं।

पुष्कर द्वीप = इस पुष्कर द्वीप में खासकर पुरुष की लीला है और सत्पुरुष ही यहाँ का अधिष्ठाता है।

इन चारों * द्वीपों में जुदे-जुदे प्रकार से सत्पुरुष की ही

ब्रह्मात्माओं के प्रथम अवतरण के समय व्रज और रास लीला के अखण्ड हो जाने से बन गए तथा चौथा बहिस्त स्वयं तृतीय श्याम स्वरूप के नाम से हुआ, जिन्होंने अक्षरातीत धाम से ब्रह्मात्माओं के नाम संदेश-पत्र अर्थात् कुरान ग्रंथ का अवतरण किया।

* उक्त चारों द्वीपों में सौ-सौ करोड़ हंसरूपी आत्मायें अपने-अपने अधिष्ठाता के साथ रहतीं हैं। अतः विष्णुलोक, सतलोक और श्वतेद्वीप में सौ-सौ करोड़ हंसरूपी आत्मायें सखी रूप में, तो पुष्कर द्वीप में सौ करोड़ हंसरूपी आत्मायें सखा रूप में रहती हैं। ये हंसरूपी आत्मायें वे ही हैं; जिन्होंने सतलोक की तीन पुरियों में चार प्रकार की मुक्तियों में से अपने-अपने इष्ट से सायुज्य मुक्ति प्राप्त की थी। जिन आत्माओं ने सतलोक में सखी भाव से त्रिदेवा में मुक्ति प्राप्त की, वे यहाँ (तीनों द्वीपों में) सखी के रूप में तथा जिन आत्माओं ने सतलोक में सखा भाव से

लीला वर्तमान है, सतपुरुष को पर विष्णु भी कहते हैं। यथा-

स्वमहिम्ना सर्वाल्लोकान्सर्वान्देवान्सर्वानात्मनः।
सर्वाणि भूतानि व्याप्नोति व्यापयति इति विष्णुः।।

अर्थ - जिन्होंने अपनी महिमा से यत्र-तत्र सर्वत्र ओतप्रोत होकर इस विश्व में सम्पूर्ण को धारण कर रखा है, जो सबको खिला-पिला रहे हैं, उन्हीं को तो विष्णु कहा है। जब विश्व में विष्णु के विविध रूप जैसे - हिरण्यगर्भ महाविष्णु, 'सहस्रशीर्षा पुरुषः', शेषशायी, चतुर्भुजी वैकुण्ठाधीश - "अंग समावे अंग में, ये नहीं वासना अन्य" - (श्री मुख) हैं, तो अक्षर पुरुष के देश, श्वेतद्वीप में उनका एक स्वरूप होना युक्तियुक्त ही है। अतः यह अव्याकृत का महाकारण स्वरूप सबका ही मूल है। बस, इसके आगे विष्णु की लीला नहीं है।

शुद्ध कारण में :-

अव्याकृत के महाकारण मंडल का कारण स्थान नित्य वैकुण्ठ से परे है। यहाँ पर अखण्ड व्रजलीला का प्रतिभास है। जिस व्रजलीला को सबलिक ने अपने चित्त में अखण्ड रूप से धारण किया है, उसी का यह प्रतिबिंब है। यहाँ नन्द, यशोदा, ग्वाल-बाल, गोप-गोपी आदि सहित श्री राधा-कृष्ण की जितनी भी

सायुज्य मुक्ति प्राप्त की, वे पुष्कर द्वीप में सखा रूप में अपने-अपने इष्ट के साथ आनन्द विहार करेंगी। ये अधिष्ठाता पुरुष चार व्यूह के रूप में हैं। त्रिदेवा संकर्षण व्यूह से उत्पन्न हैं। इस तरह त्रिदेवा भी व्यूह के माध्यम से यहाँ शामिल हैं।

लीलाएँ हैं, वे सभी नित्य-निरंतर प्रतिभासिक हैं। वे वेद-ऋचा सखियाँ, जिन्हें उद्धव ने योगाभ्यास का उपदेश दिया था, वे यहीं आकर मुक्त हुई हैं। चैतन्य महाप्रभु, नरसैयां, वल्लभाचार्य, नरसिंह मेहतादि जितने भी व्रजलीला के उपासक भक्त हैं, वे सब यहीं आकर मुक्त होते हैं।

माधवपुर (द्वारिका) में विष्णुरूप श्री कृष्ण ने रूक्मिणी के विवाह के समय लक्ष्मीरूप रूक्मिणी को संकेत मात्र से जिस व्रज का दर्शन कराया था, वह यही व्रज है। ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देव भी इसी व्रजबिहारी श्री राधा-कृष्ण की उपासना करते हैं तथा वे अन्त में इसी स्थान को प्राप्त होते हैं और यही स्वरूप उनकी परात्मा है।

शुद्ध महाकारण में :-

अव्याकृत के महाकारण मण्डल के शुद्ध महाकारण को तुर्य तथा तुर्यातीत कहते हैं। अव्याकृत के महाकारण मण्डल के कारण में जिस व्रजलीला का वर्णन हो आया है, उसी लीला में गोलोक धाम का आनन्द अभिव्यक्त होता है। उपरोक्त व्रजलीला से परे महाकारण मंडल के महाकारण तुर्यपाद में नित्य रासलीला का प्रतिभास है, इसीलिए इस लीला को 'प्रतिभासिकी' रासलीला कहते हैं। चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म ने जिस लीला को अपनी बुद्धि में अखण्ड रूप से धारण कर रखा है, उसी का यह प्रतिभास है। अतः यहाँ यह लीला सदा-सर्वदा, नित्य-निरंतर होती रहती है। वेदों ने इसी रासलीला का दर्शन कर, श्रीकृष्ण के साथ रास-रमण

करने के लिए स्तुति की थी। जिसे वेदस्तुति * कहते हैं। इति -

नास्य ज्ञानं ब्रह्मसृष्टिं विना कस्यापि जायते।
अक्षरब्रह्महृदये वास्तवीं विद्धि शंकरे।।
नित्यं वृन्दावने या च सा स्मृता प्रातिभासिकी।
व्रजभूम्यां च या लीला सा प्रोक्ता व्यावहारिकी।।

- (सदाशिव संहिता)।

अर्थ - शिवजी पार्वती जी से कहते हैं कि "हे गिरिजे! रासलीला के त्रिविध रहस्य को सुनकर मनुष्य भवसागर को तर जाता है, लेकिन जीवसृष्टी के हृदय में यह रहस्य यदि बड़े पुण्य संस्कार या बड़ा सौभाग्य हो तो ही जम पाता है। इसे तो

---

* नारायणादि रूपाणि ज्ञातान्यस्माभिरच्युत।
सगुणं ब्रह्म सर्वेदं वस्तुबुद्धिर्न तेषु नः।।

- (वृहद्वामन पु.)।

अन्वयार्थ - श्रुतियाँ स्तुति करती हुई कहती हैं कि हे कृष्ण!

नारायणादि रूपाणि = आद्य नारायण से लेकर जितने भी ब्रह्मरूप धारण करने वाले देवादि हैं; ज्ञातान्यस्माभिरच्युत = उन सभी को हम जानते हैं, हे अच्युत कृष्ण!; सगुणं ब्रह्म सर्वेदम् = वे सब के सब सगुण उपाधि वाले हैं; वस्तबुद्धिर्न तेषु नः = ब्रह्मभावरूप, वस्तु बुद्धि हमारी उनमें नहीं आती है।

भावार्थ - हे अच्युत कृष्ण! आद्य नारायणजी से लेकर यावत् भगवान के ही रूप हैं, यह हमें विदित है। वे सब के सब सगुण ब्रह्म हैं - मायायुक्त गुणों से परवश हैं। अतः हमें उनके प्रति ब्रह्मभाव उत्पन्न ही नहीं होता।

सर्वप्रथम ब्रह्मसृष्टि-ब्रह्मात्मायें ही ग्रहण कर जीवों को प्रदान कर सकती हैं। कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के हृदय में अनादि काल से जो अखण्ड रासलीला वर्तमान है; उसे वास्तवी रासलीला कहते हैं क्योंकि वह अक्षरातीत ब्रह्म-ब्रह्मात्माओं द्वारा खेली गयी है। अत: नित्य वृन्दावन में जो रासलीला होती है, उसे प्रतिभासिकी रासलीला कहते हैं। वास्तविक लीला का यह प्रतिभास होने से, प्रतिभासिकी नाम युक्तियुक्त ही है। इसे अन्यान्य नामों से भी पुकारा जाता है अर्थात् इस विश्व की व्रज भूमि में जो रासलीला हुई है, उसे तो व्यावहारिकी लीला कहते हैं।

अव्याकृत के महाकारण मण्डल अन्तर्गत जिस चार प्रकार की लीला-सुमंगला शक्ति की, पुरुष लीला, व्रज लीला तथा रास लीला का वर्णन हुआ है, उन चारों लीलाओं का प्रतिबिंब क्षर-पुरुष-आदिनारायण के महाकारण मण्डल में यथाक्रम ज्यों का त्यों पड़ा है। केवल अन्तर इतना ही है कि अव्याकृत अन्दर की सभी लीलाएँ नित्य-अविनाशी हैं तथा आदिनारायण के अन्दर की सभी लीलाएँ अनित्य-नाशवन्त् हैं। ये लीलाएँ तो जब (महाप्रलय) तक आदिनारायण का अस्तित्व रहेगा, तभी तक वर्तमान रहेंगी। अन्त में महाप्रलय के समय तो ये उन्हीं के साथ लय को प्राप्त हो जायेंगी।

यह अव्यक्त-अव्याकृत पुरुष सर्व साधारण जीवों को नितान्त दुर्लभ एवं अति अगम्य है। वास्तव में यह प्रकृति और मूल प्रकृति का प्रतिबिंब है, किन्तु चिद्रूपाक्षर सबलिक के पुरुष भाव का इसमें प्रतिभास होने पर इसे प्रकृति-पुरुष भी कहते

हैं। छहों शास्त्र भिन्न-भिन्न नाम-रूप से इसी (अव्याकृत के महाकारण मण्डल) को "ब्रह्म" मानते हैं। यथा-न्याय शास्त्र वाले इसे आत्मरूप से ब्रह्म मानते हैं, तो मीमांसा शास्त्र वाले इसे कर्मरूप से ब्रह्म मानते हैं। योगदर्शन शास्त्र वाले इसे ज्योतिरूप से ब्रह्म मानते हैं, तो सांख्य शास्त्र वाले इसे प्रकृति-पुरुष रूप से ब्रह्म मानते हैं। पुनः वैशेषिक शास्त्र वालों ने इसे कालरूप से ब्रह्म माना, तो वेदान्त मत वाले इसे ही निर्गुण-निराकार रूप से ब्रह्म मानते हैं।

इस अव्याकृत के महाकारण को प्रकृति-पुरुष के सिवाय मूलमाया, निजमाया, महामाया तथा अजात्रि वर्णी आदि-आदि अनेकों नामों से कहते-पुकारते हैं। इसमें केवल नाम मात्र का अन्तर है, नहीं तो यह एक ही तत्त्वविशेष अव्याकृत कूटस्थ अक्षर ब्रह्म का मन है। यह शुद्ध प्रणव से लेकर अपने चारों स्वरूपों की समष्टि है। इसी को चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म का स्थूल * कहते हैं। इति -

* अव्याकृत के महाकारण मण्डल के चारों भागों - स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण में जिन-जिन लीलाओं का वर्णन किया गया है, उन चारों पादों की यथावत् लीला सबलिक ब्रह्म (चिद्रूपाक्षर) के स्थूल पाद में भी है। इन दोनों स्थानों की लीलाओं में रत्तिभर भी अन्तर न होने के कारण इनका भिन्न-भिन्न वर्णन नहीं किया गया है। इसीलिए जिस प्रकार अव्याकृत के महाकारण में सुमंगला शक्ति का, चार द्वीपों का, व्रजलीला का और रासलीला का वर्णन है, वैसा ही और उतना ही वर्णन सबलिक के स्थूल में भी है, ऐसा समझना चाहिए। अव्याकृत के महाकारण को ही सबलिक का स्थूल कहा गया है।

❖ एकादश - तरङ्ग ❖

सबलिक ब्रह्म

- (चिदानन्द लहेरी)-

- (सबलिक ब्रह्म का सूक्ष्मपाद-कारण समष्टि)

उपरोक्त कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के चौथे पाद-अव्याकृत से परे, अक्षर ब्रह्म के सूक्ष्म पाद सबलिक ब्रह्म का सूक्ष्म स्थान है। इस स्थान में सुधासिंधु के मध्य कल्पवृक्ष से घिरे हुए मणिमय द्वीप में एक शिवाकार मंच है। उस +मंच पर चिदानन्द लहेरी विराजमान हैं। उसमें परम शिव, ब्रह्म शिव, नाद शिव, सदा शिव और शिव इन पाँचों शिवों में से चार शिव की पाटी और परम शिव का आसन है। अत: उस मंच पर चार शिव शक्तियों के पाये और परम शिव शक्ति व्यापिका का बुनाव कल्पित कर, महान् प्रबल प्रताप लेकर चिदानन्द लहेरी अधिष्ठित होकर

+ सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपवाटीपरिवृते।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।।
शिवाकारे मंचे परमशिवपर्यङ्क-निलयाम्।
भजन्ति त्वां धन्या: कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

- (सौन्दर्य लहेरी, शंकराचार्यिका)।

पञ्च ब्रह्ममये मञ्चे शयान: पुरुषो महान्।
महाविष्णुस्वरूपेण स्वप्ने ब्रह्माण्डमीक्षते।।

- (पुराण सं.)।

विराजमान हैं।

वस्तुत: उपरोक्त चिदानन्द लहेरी ही कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के हृदयाकाश से उदित हुई सुमंगला नामक शक्ति है। यह चिद्रूपाक्षर के द्वारा रूपवती होकर निद्रारूप विश्वोत्पत्ति लयादि कार्य में प्रवृत्त होती है। इसने तो अपने चमत्कार से चिद्रूपाक्षर (सबलिक) को मोहित कर रखा है।

यह जब सृष्टि कार्य में प्रवृत्त होती है, तब अपनी सर्व सामग्रियों के साथ पूर्वोक्त अव्याकृत के महाकारणस्थ शुद्ध स्थूल स्थान में आकर सद्रूपा माया-सुमंगला नाम से प्रसिद्ध

अन्वयार्थ - सुधासिन्धोर्मध्ये = सबलिक के सूक्ष्म में सुधा की सिन्धु है, जिसके मध्य में; सुरविटपवाटीपरिवृते = सुरवृक्ष - कल्पवृक्षादि से आवृत हुए; मणिद्वीपे नीपोपवनवति = मणिमय द्वीप के बीच में, वन-उपवनों से घिरे हुए; चिन्तामणिगृहे = चिन्तामणिमय घर में; शिवाकारे मंचे = कल्याणकारी शय्या पर; परमशिवपर्यङ्कनिलयाम् = परमशिवादि पंचशिव युक्त विराजमान स्वरूप को; भजन्ति त्वां धन्या: = भजते हैं जो, वे धन्य हैं; कतिचन चिदानन्दलहरीम् = कितने ही जन (कतिपय लोग) चिदानन्द लहेरी को; पञ्च ब्रह्ममये मञ्चे = ब्रह्मस्वरूपा व्यापिका, शिवस्वरूपा संहारिका, विधिशक्ति उद्गारिका, विष्णुशक्ति पालिका तथा सर्वकारणों की कारणरूपा सद्रूपा; शयान: पुरुषो महान् = महान् पुरुष चिदानन्द लहेरी शयन कर रहे हैं; महाविष्णुस्वरूपेण = यह महान् पुरुष महाविष्णु के रूप में; स्वप्ने ब्रह्माण्डमीक्षते = स्वप्निक ब्रह्माण्ड नारायणी सृष्टि का विस्तार करते हैं।

विराजमान होती है। चिद्रूपाक्षर द्वारा प्रगट होने के कारण इसे उनकी सुरता अथवा विद्याशक्ति कहते हैं।

इस स्थान (सूक्ष्म पाद चिदानन्द लहेरी) में भी लीला भेद से ये चार स्थान निश्चित हैं। अतः १. शुद्ध स्थूल २. शुद्ध सूक्ष्म ३. शुद्ध कारण ४. शुद्ध महाकारण।

१. शुद्ध स्थूल में : - करोड़ों शक्तियों के साथ सर्वकार्य - दक्षा महाप्रबल शिवकल्याणी शक्ति रहती है।

२. शुद्ध सूक्ष्म में : - चिद्रूपाक्षर की निज-बाललीला चलती है।

३. शुद्ध कारण में : - वास्तविक अखण्ड ब्रजलीला की प्रतिबिंब लीला वर्तमान स्थित है।

भावार्थ - सबलिक के सूक्ष्मपाद में एक सुधा की सिन्धु है, जिसके मध्य में सुरवृक्ष - कल्पवृक्षादि से आवृत एक मणिमय द्वीप है। उस द्वीप के मध्य भाग में वन - उपवनों से घिरे हुए चिन्तामणिमय घर में पंचशिवशक्ति युक्त कल्याणकारी शय्या पर विराजमान चिदानन्द लहेरी को जितंने भी जन भजते हैं, वे सब धन्य-धन्य हैं।

इस ब्रह्मस्वरूपा व्यापिका, शिवस्वरूपा संहारिका, विधिशक्ति उदगारिका, विष्णुशक्ति पालिका तथा सर्वकारणों की कारण रूपा सद्रूपा स्वरुपी मंच पर महान् पुरुष चिदानन्द लहेरी शयन कर रहे हैं। यही महान् पुरुष महाविष्णु के रूप में स्वप्निक ब्रह्माण्ड नारायणी सृष्टि का विस्तार करते हैं।

४. शुद्ध * महाकारण में : - वास्तविक महारास लीला का प्रतिबिंब नित्य - निरंतर वर्तमान चल रहा है।

चिद्रूपाक्षर सबलिक के चिदांश तथा केवल ब्रह्म के आनन्दांश का ही संयुक्त नाम "चिदानन्द लहेरी" है।

★ सबलिक ब्रह्म का कारण स्वरूप ★

- नित्य गोलोक धाम -

- (ब्रजलीला) -

पूर्व कथित चिदानन्द लहेरी से परे चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म का कारण स्थान है। इस स्थान को शास्त्रों में माया का शीष (सिर) रूप नित्य गोलोक कहा गया है। यहाँ साढ़े तीन कोटि सखियों के साथ श्री राधा-कृष्ण की समस्त ब्रजलीला नित्य-निरंतर होती रहती है।

*** (१) वृन्दावनं महापुण्यं सर्वपावनपावनम्।**
सर्वलोक बहिर्भूतं निराधारं परिस्फूरत्।।

- (सनत्कुमार सं.)।

अन्वयार्थ - वृन्दावनं महापुण्यम् = वृन्दावन महान् पुण्यभूमि है और वह; सर्वपावनपावनम् = सभी पवित्र भूमियों में से पवित्र है; सर्वलोक बहिर्भूतम् = तमाम लोकों से न्यारी तथा; निराधारं परिस्फूरत् = निराधार प्रकाशित है।

भावार्थ - नित्य वृन्दावन महापुण्य भूमि 'चौदह लोक से मथुरा न्यारी' की तरह ब्रह्माण्ड के ऊपर है। यह वृन्दावन परमातिपरम तथा पावनातिपावन और सम्पूर्ण लोकों से परे निराधार वर्तमान स्थित है।

सम्पूर्ण ऐश्वर्यपूर्ण विभूतियों के साथ-चौरासी कोस व्रजमण्डल, वन, पर्वत, यमुना, गोप-गोपी तथा गौ, ग्वाल-बाल, नन्द-यशोदादि जितनी भी सामग्रियाँ हैं, वे सब यहीं से मृत्युलोक में उतरी थीं। पुनः यहीं पर आकर अखण्ड हो गईं। इस लीला को कूटस्थ अक्षर ब्रह्म ने अपने चिद् (चित्त) अन्तःकरण में अखण्ड रूप से धारण कर रखा है। अतः-

(२) नित्यंवृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डोपरिसंस्थितम्।
पूर्णब्रह्म सुखैश्वर्यं नित्यमानन्दमव्ययम्।।
तत्र कैशोरवयसं नित्यमानन्दविग्रहम्।।

- (वाराह संहिता)।

अन्वयार्थ - नित्यंवृन्दावनं नाम = नित्य वृन्दावन नामक भूमिका; ब्रह्माण्डोपरिसंस्थितम् = इस स्वप्निक - नश्वर ब्रह्माण्ड से परे नित्य वर्तमान में स्थित है; पूर्णब्रह्म सुखैश्वर्यम् = पूर्ण ब्रह्म के ऐश्वर्यमय सुखानन्द में; नित्यमानन्दमव्ययम् = नित्य प्रति अविनाशी आनन्दमयी लीला करते रहते हैं; तत्र कैशोरवयसम् = जहाँ पर किशोरावस्थामय - आनन्द स्वरूप कृष्ण - राधिका तथा गोपीजन; नित्यमानन्दविग्रहम् = नित्य आनन्दमय स्वरूप में रास-रमण किया करते हैं।

भावार्थ - नित्य वृन्दावन नामक भूमिका इस स्वप्निक ब्रह्माण्ड से परे (ऊपर) है। वहाँ पूर्णब्रह्म के ऐश्वर्यमयी सुखानन्द में नित्य प्रति अविनाशी आनन्दमयी लीला करते रहते हैं। वहीं पर किशोरावस्था में पूर्णानन्द स्वरूप श्री कृष्ण, राधिका तथा प्राणवल्लभा गोपीजन आनन्दमय स्वरूप में नित्य रास-रमण किया करते हैं।

✢ द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषिणम्।
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमंत्रभम्।।
ब्रह्माविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम्।
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम्।।
- (देवी भा., ९-११)।

✢ अन्वयार्थ - द्विभुजं मुरलीहस्तम् = दो भुजा वाला स्वरूप, मुरली हाथ में लिए हुए (गोलोक धाम के श्री कृष्णजी); किशोरं गोपवेषिणम् = किशोरावस्था के ग्वाल भेष में विराजमान हैं; स्वेच्छामयं परं ब्रह्म = स्वेच्छामयी पूर्ण ब्रह्म स्वरूप; परिपूर्णतमंत्रभम् = सम्पूर्ण मंत्रों के साक्षी रूप हैं; ब्रह्माविष्णुशिवाद्यैश्च = उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देव; स्तुतं मुनिगणैर्नुतम् = स्तुति-प्रार्थना सहित नमनादि करते रहते हैं, ऋषि-महर्षि भी; निर्लिप्तं साक्षिरूपं च = निर्लेप और साक्षी रूप तथा; निर्गुणं प्रकृतेः परम् = निर्गुण प्रकृति (अव्याकृत) से परे (गोलोक) धाम में विराजमान हैं।

(३) साक्षात्कृष्णो व्रजे नित्यं स्वांशेनैव विहारिणः।
तस्यांशो हि मथुरायां वासुदेवो जगद्गुरुः।।
द्वारकायां तदंशोऽस्ति विष्णुवीर्यो यतः प्रभुः।
कंसं जघान वासुदेवः श्रीकृष्णो नन्दसूनुर्न तु।।
- (सनत्कुमार संहिता)।

अन्वयार्थ - साक्षात्कृष्णो व्रजे नित्यम् = साक्षात् ब्रह्म स्वरूप कृष्ण गोकुलवासी (व्रजवाले) हैं; स्वांशेनैव विहारिणः = अपने अंश (अक्षरातीत के) द्वारा विहार करने वाले; तस्यांशो हि मथुरायाम् = उसका (व्रजवाले का) अंश ही मथुरा के कृष्ण हैं (गोलोकी)- (नारायण की आत्मा, अक्षर

भावार्थ - इस गोलोकधाम में द्विभुज स्वरूप श्री कृष्णजी मुरली हाथ में लिए हुए, किशोरावस्था की भाँति इच्छामय रूप में विराजमान हैं। प्रकृति - अव्याकृत से परे स्थित इन श्रीकृष्ण के ब्रह्ममय स्वरूप को ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देव एवं ऋषि महर्षि गण स्तुति-प्रार्थना सहित नमन किया करते हैं तथापि जान नहीं पाते। इसी कारण यह स्वरूप निर्गुण, निर्लेप एवं साक्षी रूप से वर्तमान स्थित है।

सबलिक ब्रह्म का कारण स्थान, अखण्ड गोलोक धाम जो ब्रह्मसृष्टियों की शाला है ''शाला है गोलोक'' तथा जहाँ अखण्ड वास्तविक ब्रजलीला है, उसके बायीं ओर उतक्रम से गिनने पर ब्रज की चौथी मुक्ति का स्थान है। जो जीव तारतम्य ज्ञानद्वारा इसको धारण करेंगे, इसका चिंतन करेंगे, वे अन्त में इसी मुक्ति स्थान को प्राप्त होंगे। इति -

---

का आवेश); वासुदेवो जगद्गुरुः = जिन्हें जगत के गुरु वासुदेव कहते हैं; द्वारकायां तदंशोऽस्ति = द्वारिकादि स्थानों में लीला करने वाले कृष्ण, मथुरा वाले कृष्ण के अंशभूत हैं; विष्णुवीर्यो यतः प्रभुः = विष्णु स्वरूप हैं, पराक्रमी जो नारायण के अंश हैं; कंसं जघान वासुदेवः = कंस वध करने वाले जो हैं; श्रीकृष्णो नन्दसूनुर्न तु = वे कृष्ण नन्द पुत्र नहीं हैं।

भावार्थ - स्वांश - अक्षरातीत के अंश अर्थात् अपने अंश द्वारा विहार करने वाले ब्रजबिहारी कृष्ण ही साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हैं। मथुरा में लीला करने वाले (कंस वध करनेवाले) जगद्गुरु वासुदेव कृष्ण, गोकुल वासी कृष्ण के अंश मात्र हैं। द्वारकादि स्थानों में लीला करने वाले कृष्ण मथुरावासी कृष्ण के अंशभूत विष्णु स्वरूप हैं, परन्तु कंस वध करनेवाले कृष्ण, नंदपुत्र नहीं हैं।

★ सबलिक ब्रह्म का महाकारण ★

- (महारास) -

नित्य गोलोक धाम से परे चिद्रूपाक्षर (सबलिक) का यह नित्य वृन्दावन स्वरूप महाकारण स्थान है, जिसमें वास्तविक महारास लीला अखण्ड वर्तमान है। अक्षरातीत श्रीकृष्ण परमात्मा ने केवल ब्रह्म के द्वारा अक्षर को जिस ब्रह्मानन्द रस का अनुभव कराया था, उसे अक्षर ने अपनी जाग्रत बुद्धि द्वारा सबल वृत्ति के अन्त:करण में धारण कर लिया अर्थात् वह सबलिक ब्रह्म के महाकारण स्थान में अखण्ड वर्तमान है।

यद्यपि यह लीला योगमाया के रासमंडल के अनुरूप स्वरूप बाद में अखण्ड हुई है, परन्तु इस लीला के ब्रह्मानन्द का महत्त्व केवल धाम की नित्यलीला से कई अधिक है, क्योंकि केवल-धाम की लीलाओं में लवमात्र आनन्द उदय रहता है; परन्तु इसमें तो सदा ही पूर्ण ब्रह्मानन्द उदित है; क्योंकि पूर्णब्रह्म के आवेश द्वारा जो रास रचा गया, वह केवल अक्षर ब्रह्म की इच्छा पूर्ण करने के लिए था। अत: उसमें पूर्ण ब्रह्मानन्द का उदय था। फिर इसे अक्षर ने अपनी जाग्रत बुद्धि द्वारा धारण किया, इस कारण भी उसका महत्त्व केवल के आनन्द से कई अधिकाधिक बढ़ गया; क्योंकि वह तो स्वयं पूर्ण ब्रह्मानन्द वास्तविक स्वरूप की लीला हुई। अत: इस विषय शास्त्रों में लिखा है कि -

आनन्दरूपा सामग्री सर्वाऽखण्ड सुखात्मिका।
न मायागुणसंसर्गः कदाचित्कुत्रचित्प्रिये!।।
- (माहेश्वर तंत्र)।

अर्थ - आनन्दकारी योगमाया द्वारा रचित इस ब्रह्माण्ड में हे प्रिये! मायावी गुणों का संसर्ग ही नहीं था। वहाँ तो यावत् सामग्रियाँ अखण्ड, आनन्द स्वरूप, सुखदायी एवं अधिकाधिक सुखप्रद थीं। अतः

+ वृन्दावनाश्रया लीला साधुः सर्वत्र दुर्लभा।
गुह्याद्गुह्यतमाऽगम्या नित्यऽक्षरहृदि स्थिता।।
- (पुराण सं.)।

भावार्थ - अक्षर ब्रह्म के हृदयाकाश रूप सबलिक ब्रह्म के महाकारण स्थान के अखण्ड वृन्दावन ❁ में होने वाली रासलीला

+ अन्वयार्थ - वृन्दावनाश्रया लीला = वृन्दावन के आश्रय में की गई रास लीला (जो सबलिक के महाकारण में वर्तमान है); साधुः सर्वत्र दुर्लभा = हे साधनशील साधुओं! वह सर्वोपरि, सब प्रकार से दुर्लभ - अप्राप्य है, गुह्याद्गुह्यतमाऽगम्या = गोप्य से भी अति गोप्य होने के कारण वह लीला मन-वचनों-शब्दों से अगम्य है जो; नित्यऽक्षरहृदि स्थिता = निरंतर अक्षर ब्रह्म के हृदय-बुद्धि अन्तःकरण (सबलिक) में अखण्ड है।

❁ ''अक्षरब्रह्महृदये वास्तवीं विद्धि शंकरे''
- (सदाशिव संहिता)।

भावार्थ - हे शंकर! अक्षर ब्रह्म के हृदयाकाश में (सबलिक के महाकारण स्थान में) जो महारास अखण्ड हो रहा है, वह वास्तविक है।

नित्य निरंतर अखण्ड और सर्वाधिक दुर्लभ है। उस लीला का रहस्य गूढ़ातिगूढ़ होने से अतिदुष्प्राप्य भी है। अक्षरातीत पूर्णब्रह्म के सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का जहाँ नित्य निरन्तर उत्तरोत्तर उदय हो रहा है, ऐसा यह सुन्दरातिसुन्दर धाम, गुणों से परे होने के हेतु ही इसे सर्व प्रकार से दुर्लभ और दुष्प्राप्य बताया गया है। इसी नित्यानन्द सुख धाम में श्री राधा कृष्ण की युगल जोड़ी नित्य निरन्तर क्रीड़ा करती रहती है। इस प्रकार इस वृन्दावन की रासलीला ❖ को उत्तमातिउत्तम माना है। अतएव जब यह लीला वास्तविक रूप से

❖ (१) शब्दातीत हुते जो ब्रह्मांड, जाए तिनमें करी रोसन।
अक्षर प्रकास करके, जाए पोहोंची धाम के बन।।
- (प्रकाश हिं., प्र. ६/चौ. १७)।

भावार्थ - जिन ब्रह्मांडों (अखण्ड व्रज तथा रास के ब्रह्माण्ड) के विषय में आज तक कुछ कहा नहीं जा सका, तारतम ज्ञान की ज्योति ने तो उसे स्पष्ट रूपेण प्रकाशित कर दिया। वे तो सबलिक के कारण और महाकारण स्थान में अखण्ड हैं। तत्पश्चात् यह ज्योति कूटस्थ अक्षर ब्रह्म का परिचय देते हुए दिव्य अखण्ड अक्षरातीत परमधाम के वनों तक पहुँच गई।

(२) सब गिरदवाए बन देखाए के, किए धाम मंदिर प्रकास।
ब्रह्मानंद ब्रह्मसृष्टि में, प्रगट कियो विलास।।
-(प्रकाश हिं., प्र. ६/ चौ. १८)।

भावार्थ - तारतम की ज्योति ने तो परमधाम के चारों ओर के वनों की शोभा दिखाकर, धाम के मंदिरों का भी वर्णन कर दिया। साथ ही परब्रह्म और ब्रह्मात्माओं के आनन्द विहार का शब्दों में वर्णन कर दिया।

अखण्ड हो गई, तो उसे जितना भी महत्त्व प्रदान किया जाय, न्यूनातिन्यून ही रहेगा। अत: यह स्थान उतक्रम से गिनने पर रास की पाँचवी मुक्ति * का स्थान है। कुरान की भाषा में इसे ही "दो भिस्त अव्वल लैल" में कहा है।

★ सबलिक ब्रह्म का निर्मल चेतन ★

सबलिक ब्रह्म का निर्मल चेतन एवं चिद्रूपाक्षर सबलिक का जो मुख्य: धाम है, वह कूटस्थ अक्षर ब्रह्म का प्रतिभास है। यहाँ पर सबलिक ब्रह्म अनन्त, अगणित शक्तियों सहित विराजमान हैं। अपनी अर्धाङ्गिनी लक्ष्मी जी सहित, यह युगल जोड़ी यहाँ बाल्यावस्था में रहती है।

जिस तरह सबलिक ब्रह्म कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के चिदांश के कोटिश: भाग का स्वरूप है, उसी तरह केवल ब्रह्म अक्षरातीत के आनन्दांश के कोटिश: भाग का स्वरूप है। पुन: इन दोनों

---

* "दो भिस्त अव्वल लैल में, चौथी महंमद आए जित।"
- (खुलासा, प्र. ५/ चौ. १२)।

भावार्थ - अव्वल स्वरूप के नाम से उपस्थित चार बहिस्तों के विवरण में से दो बहिस्त ब्रह्मात्माओं के प्रथम अवतरण के समय व्रज और रास लीला के अखण्ड हो जाने से बने हुए हैं, जिसको 'दो भिस्त अव्वल लैल' के नाम से कहा है तथा चौथा बहिस्त स्वयं तृतीय श्याम स्वरूप के नाम से हुआ, जिन्होंने अक्षरातीत धाम से ब्रह्मात्माओं के नाम संदेश-पत्र अर्थात् कुरान ग्रंथ का अवतरण किया।

का धाम एक ही भूमिका में आमने-सामने स्थित है। केवल ब्रह्म का पूर्वाभिमुख है, तो सबलिक ब्रह्म का धाम पश्चिमाभिमुख विराजमान है। इन दोनों धामों के मध्य में श्री यमुनाजी महारानी दोनों तरफ से साढ़े चार लाख कोस की दूरी पर अखण्ड रूपेण बह रही है। जिस तरह अक्षर ब्रह्म नित्यान सर्वातीत-परात्पर स्वरूप परमधाम स्थित श्री राजजी के दर्शनार्थ अक्षरातीत धाम में जाते हैं, उसी तरह सबलिक ब्रह्म भी नित्य केवल ब्रह्म के दर्शनार्थ केवल धाम में जाते हैं।

इनकी (सबलिक की) ऐसी महिमा है कि इनके नेत्र-भ्रमण ÷ मात्र से असत्, जड़, दुखा:त्मक असंख्य अगणित ब्रह्माण्ड उत्पन्न-लय हो जाते हैं, जिसमें असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश,

---

÷ महाविष्णु सहस्राणि महाशम्भु शतानि च।
नेत्रभ्रमणमेवास्य तदक्षरं परं पदम्।।

- (पद्म पुराण)।

अन्वयार्थ - महाविष्णु सहस्राणि = हजारों क्षर पुरुष - आदिनारायण - महाविष्णु; महाशम्भु शतानि च = सैकड़ों शम्भु आदिक देवादि; नेत्रभ्रमणमेवास्य = नेत्र के संचालन मात्र से ही अक्षर ब्रह्म में लय हो जाते हैं (एक पल में); तदक्षरं परं पदम् = वह अक्षर-ब्रह्म, जो परम पद में कूटस्थ रूप में है।

भावार्थ - जिस ब्रह्मांड में हम लोग वर्तमान स्थित हैं, ऐसे हजारों ब्रह्माण्ड हैं। इसलिए उन ब्रह्माण्डों के हजारों महाविष्णु-आदिनारायण और सैकड़ों शम्भु आदि देव सहित वे असंख्य ब्रह्माण्ड भी अक्षर ब्रह्म के नेत्र संचालन - (चक्षुर्निमीलेन) मात्र से लीन तथा नाश हो जाते हैं।

शेष, गणेश एवं अगणित देवी-देवता, काली, महाकाली, भगवती, भवानी, अवतार तथा अपार तीर्थंकर, दानव-मानव आदि चारों खान ✡ के जीव अनन्त बार अपनी पूर्णायु भोगकर नष्ट-विनष्ट हो जाते हैं।

इसी स्थान को अक्षरातीत श्री कृष्णजी के तृतीय श्याम स्वरूप की मुक्ति ✪ का स्थान कहा है, जो उतक्रम से छठे

✡ जीवों मिने जुदी जिनसे, कहियत चारों खान।
थावर जंगम सब मिलके, लाख चौरासी निरमान।।
- (कलश हिं., प्र. १७ / चौ. २९)।

भावार्थ - इस सृष्टि में उपस्थित जीवों की चौरासी लाख जातियाँ एवं योनियाँ हैं, जिन्हें 'थावर और जंगम' इन दो भागों में विभक्त किया गया है। थावर मतलब स्थिर रहनेवाला और जंगम मतलब चलने वाला। पुन: 'थावर और जंगम' की उत्पत्ति चार खान (प्रकार) से मानी गयी है, जैसे ''अण्डज पिण्डज स्वेदजोद्भिज्जा:'' अर्थात् अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज। अण्डज से तात्पर्य है, अण्डे से उत्पन्न होने वाले प्राणी जैसे साँप, मुर्गी-पक्षी आदि। पिण्डज से तात्पर्य है, पिण्ड अर्थात् शावक के रूप में उत्पन्न होने वाले जंतु जैसे मानव, पशु आदि। स्वेदज से तात्पर्य है, पसीने से उत्पन्न होने वाले जीव जैसे खटमल, जूँ आदि और उद्भिज से तात्पर्य है भूमि को भेदकर जन्म लेने वाले, जैसे वनस्पति, वृक्ष इत्यादि।

✪ भिस्त हाल चार कुरान में, कह्या आठ होसी आखर।
ए भी सुनो तुम बेवरा, देखो मोंमनों सहूर कर।।
- (खुलासा, प्र. ५/चौ. ११)।

स्थान पर है। इसे कुरान की भाषा में 'महम्मदी बहिस्त' कहते हैं। यह तारतम्य मंत्र ग्रहण कर, धर्म मार्ग पर चलने वाले श्री कृष्ण प्रणामियों को प्रदान की गई है। इति -

भावार्थ - हे ब्रह्मात्माओं! तृतीय श्याम स्वरूप के अथर्ववेद रूपी धर्मग्रन्थ (कुरान) में चार बहिस्तों का वर्णन आता है। उसमें इस बात का भी उल्लेख है कि अंतिम दिन-क्यामत के दौरान निष्कलंक कल्कि अवतार (महामति श्री प्राणनाथजी - इमाम मेंहदी) द्वारा वे बहिस्त चार से आठ हो जायेंगे। इन सब बातों का ब्योरा जानकर तुम स्वयं विचार करो।

अत: " चौथी महंमद आए जित"

- (खुलासा, प्र. ५/चौ. १२)।

भावार्थ - चौथा बहिस्त (महंमदी बहिस्त) स्वयं तृतीय श्याम स्वरूप के नाम से हुआ।

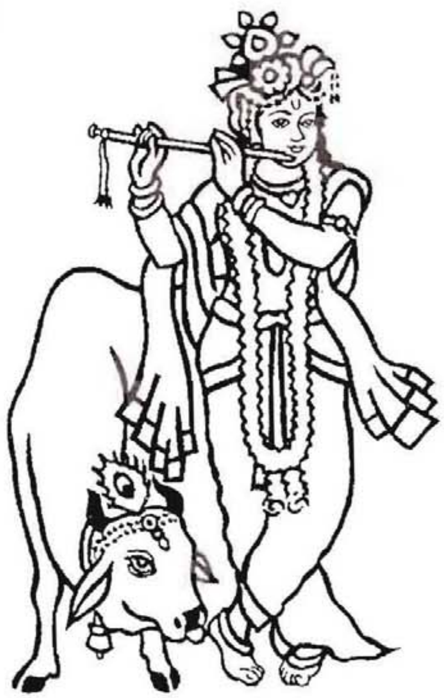

✣ द्वादश - तरङ्ग ✣

केवल ब्रह्म

(ब्रह्मानन्द लीला का अंश स्वरुप)

चिद्रूपाक्षर सबलिक से परे केवल ब्रह्म का धाम है, जो कि केवल और सबलिक दोनों एक ही लोकवर्ती, अक्षर और अक्षरातीत धाम की तरह हैं तथापि लीला भेद से दो स्थानों में प्रदर्शित हैं। दोनों धामों (सबलिक और केवल) के बीच साढ़े चार लाख कोस की दूरी पर श्री यमुनाजी * बह रहीं हैं। सबलिक धाम से केवल धाम नौ लाख कोस की दूरी पर है।

केवल ब्रह्म का केवल धाम पचास लाख कोस के एक महाप्रकाशमान द्वीप में है, जो एक करोड़ कोस विस्तारवाले अमृत के सागर के मध्य भाग में स्थित है। इस द्वीप में नौ खण्ड हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार के नौ रंगों के हैं। आठ खण्ड तो आठों दिशाओं में देदीप्यमान हैं तथा नौवाँ खण्ड इन सबके

* निजधामरसानन्दस्वप्रकाशमहोज्जवलम्।
कालिन्दी यत्र कोट्यर्कभास्वद्रत्नतटोन्नता।।
- (माहेश्वर तन्त्र)।

अन्वयार्थ - निजधामरसानन्द = स्वधाम में प्रेममयी आनन्दोत्पादक; स्वप्रकाशमहोज्ज्वलम् = स्वत: प्रकाशयुक्त अति उज्वल निजधाम के; कालिन्दी यत्र कोट्यर्क = जहाँ श्री यमुनाजी के करोड़ों; -भास्वद्रत्नतटोन्नता = सूर्य के प्रकाशयुक्त अति उज्वल रत्नजड़ित दोनों तट शोभायमान हैं।

में मणिमय जाज्वल्यमान है, जिसे मुख्यत: केवल ब्रह्म का केवल धाम कहते हैं। अत: केवल लोक का यह केवल धाम वाला खण्ड ही 'राजनगर' है।

केवल लोक का यह राजभवन (धाम) जमीन से ऊपर दस भूम्यात्मक, दस रंगों वाला है। यह राजमहल पहलदार गोल है। इसके अंदर मध्य भाग में एक चौंसठ थंभों का चबूतरा है, जिसके ऊपर मध्य में रत्नखँचित सुवर्ण का सिंहासन है। उस सिंहासन पर अपनी आनन्द स्वरूपा योगमाया स्वामिनीजी सहित केवल ब्रह्म किशोरावस्था * में विराजमान हैं। अत:

भावार्थ - इस केवल धाम के पूर्व, साढ़े चार लाख कोस की दूरी पर स्वत: प्रकाशयुक्त, अति उज्वल प्रेममयी आनन्दोत्पादक निजधाम में करोड़ों सूर्य के-से प्रकाशयुक्त परमोज्वल रत्नजड़ित श्री यमुनाजी के अति सुरम्य दोनों तट शोभायमान हैं।

* यत्र कैशोरवयसं नित्यमानन्दविग्रहम्।
गतिनाट्यकलालापं स्मितवक्त्रं निरंतरम्।।

- (पद्म पु., पाताल खण्ड)।

अन्वयार्थ - यत्र कैशोरवयसम् = जहाँ किशोरावस्था में (केवल और केवल की अर्धाङ्ग स्वामीनी ये, युगल जोड़ी केवल धाम में); नित्यमानन्दविग्रहम् = नित्यं-निरंतर आनन्द स्वरूप में रहकर; गतिनाट्यकलालापम् = नाना प्रकार के रास-विलास, रंग-राग, कला-ज्ञान और; स्मितवक्त्रं निरंतरम् = प्रसन्नता प्रगट करने वाले साधनों से संपन्न धाम में निरंतर लीला करते रहते हैं।

'रसो वै सः; ब्रह्म वै रसः' तस्मादेकाकी न रमते सः।

-(बृह.,१-४-३)।

''स एवात्मा द्विधा भवति पतिश्च पत्नी च'' (श्रुति)

आनन्दरुपा सामग्री सर्वाऽखंडसुखात्मिका।
न माया गुणसंसर्गः कदाचित्कुत्रचित् प्रिये!।।
द्रवीभूतः प्रियाधारः प्रियाभावात्मके रसम्।
प्राधान्यं तत्र नेच्छन्ति घनीभूतादपि प्रिये।।

- (माहेश्वर तंत्र)।

अर्थ - केवल रस रूप ब्रह्म होने की वजह से ही, इन्हें केवल ब्रह्म कहा जाता है। यहाँ द्रवीभूत और घनीभूत दोनों भावों में यत्र-तत्र एवं सर्वत्र रसरूप ब्रह्म ही ओतप्रोत हैं। अन्य की तरह केवल ब्रह्म में चतुष्पाद की गुञ्जाइश ही नहीं है।

सूक्ष्म कारण क्रम का भी यहाँ विधान नहीं है। यहाँ पर तो जो कुछ भी है, रस रूप ही है। यसर्थ धाम का नाम भी केवल धाम और ब्रह्म का नाम भी केवल ब्रह्म है। यहाँ पर नौ रसों की नवों भूमिकाएँ अपने स्थायी भावों से पूर्ण हैं। यहाँ जिधर दृष्टिपात

भावार्थ - इस धाम में, नित्य-निरंतर आनन्द स्वरूप की किशोरावस्था में रहकर, नाना प्रकार के रास-विलास, रंग-राग, कला ज्ञान और प्रसन्नता प्रगट करनेवाले साधनों से संपन्न स्वधाम में नित्य नई-नई लीलाएँ किया करते हैं।

करो, उधर ही विभाव, अनुभाव और स्थायी भाव * के रूप में ब्रह्मानन्द का लवानन्द सर्वत्र अभिव्यक्त हो रहा है।

यद्यपि केवल धाम में भी ब्रह्मानन्द लीला का ही रस है, लेकिन अक्षरातीत पूर्णब्रह्म के कोटिन अंश का अंश-लवमात्र है। इसलिए तो यहाँ की रसानन्द लीला को ही नवों खण्डों में नौ रसों के रूप में बताया गया है। यहाँ जब जिस खण्ड में जाते हैं, वहाँ उसी रस का अनुभव-आस्वाद * होता है। यहाँ

---

* वाचामतीत-विनयो विषयाशादशोज्झितः।
परमानन्दरसाक्षुब्धो रमते स्वात्मनात्मनि।।
- (अन्नपूर्णोपनिषद)।

अन्वयार्थ - वाचामतीत-विनयः = शब्दातीत प्रार्थना-स्तुति इत्यादि; विषयाशादशोज्झितः = विषयों से परे परमानन्द के रस से ओत-प्रोत रहते हुए; परमानन्दरसाक्षुब्धः = परम आनन्द रस में आकर्षित होकर यावत् पदार्थ जड़-चेतन; रमते स्वात्मनात्मनि = लीला-क्रीड़ा में अपनी आत्मा-अन्यात्माओं के साथ मग्न रहते हैं।

भावार्थ - वे तो प्रार्थना-स्तुति आदि विषयों से परे शब्दातीत परमानन्द के शान्त रस में ओत-प्रोत एवं परम आनन्दमय रस में आकर्षित रहते हैं तथा यावत् पदार्थ जड़-चेतन रूपी क्षेत्र की लीला-क्रीड़ा में अपनी आत्मा और अन्यात्माओं के साथ मग्न रहते हैं।

* भावनां सर्वभावेभ्यः समुत्सृज्य समुत्थितः।
अवशिष्टं परं ब्रह्म केवलोऽस्मीति भावय।।

पर केवल रसरूप ब्रह्म ही सर्वत्र ओत-प्रोत हैं। उनकी मुख्यत: शक्ति का नाम ही आनन्दकारी योगमाया है। आनन्द योगमाया के स्थूल (मन) स्थान में स्थित नित्य वृन्दावनस्थ अखण्ड महारास की लीला स्वतंत्र रूपेण अलग ब्रह्माण्ड में रचायी गयी थी [+१-२]। जिस लीला को कूटस्थ अक्षरब्रह्म ने अपनी

अन्वयार्थ - भावनां सर्वभावेभ्य: = सभी भावनाओं से परे केवल ब्रह्मरूप हैं; समुत्सृज्य समुत्थित: = यहाँ की यावत् आत्माओं को केवलानन्द रस में, ब्रह्म भाव का ही अनुभव होता है; अवशिष्टं परं ब्रह्म = जो अनुभव हुआ वह ब्रह्मानन्द का ही और जो शेष रहा वह भी केवल ब्रह्म ही है; केवलोऽस्मीति भावय = इस प्रकार जड़-चेतन रूप में ब्रह्मानन्द व्याप्य है।

भावार्थ - वे यावत् भावनाओं से परे केवल ब्रह्म रूप हैं।यहाँ की सर्वात्माओं को केवलानन्द रस में भी ब्रह्म भाव का ही अनुभव होता है। यहाँ जो अनुभव हुआ, वह ब्रह्मानन्द का ही और जो शेष रहा, वह भी केवल ब्रह्म ही है। इस प्रकार जड़-चेतन इन उभय रूपों में ब्रह्मानन्द ही व्याप्य है।

[+१] केवल ब्रह्म अक्षरातीत, सत चिद् आनन्द ब्रह्म।
ए कह्यो मोहे नेहेचे कर, इन आनन्द में हम तुम।।
- (किरंतन, प्र.६५/चौ. १२)।

भावार्थ - केवल अक्षरातीत ब्रह्म ही अद्वैत सच्चिदानन्द परमात्मा हैं। उनके द्वारा प्रतिबिंबित इस केवल ब्रह्म में अक्षरातीत संबंधी आनन्द लवानन्द

जाग्रत बुद्धि सबलिक के अन्त:करण रूपी चित्त में धारण किया है। कतिपय तारतम ज्ञानाज्ञ महात्मा लोग यहाँ तृतीय श्याम

रूप में व्यापक है। अतः अक्षरातीत के आनन्द में मेरी और सद्गुरु स्वरूप की परात्मा विद्यमान है, इस बात का अविकल्प विश्वास निश्चित रूप से मुझे सतगुरु श्री देवचन्द्र जी ने कराया है।

२ **एह स्वरूप ने एह वृंदावन, ए जमुना त्रट सार।**
घरथी तीत ब्रह्मांडथी अलगो, ते तारतमे कीधो निरधार।।
- (श्री रास, प्र. १०/चौ. ३६)।

अर्थ - ग्यारह वर्ष और बावन दिन तक व्रजलीला कर, वंशी की नाद में व्रज छोड़कर गई सखियों के साथ श्री कृष्णजी ने योगमाया का ब्रह्मांड उत्पन्न कर महारास रचाया, जिसे अखण्ड रास लीला कह कर पुकारा गया। उसी विषय में यहाँ, इस चौपाई में कहा गया है कि महारास लीला के अंतर्गत जो श्याम सुन्दर श्री कृष्ण और सखियों का दिव्य स्वरूप तथा योगमाया रचित अखण्ड वृन्दावन एवं श्री यमुनाजी का तट है, वह उत्तमातिउत्तम है। यह महारास मण्डल, घर (नित्यगोलोक-सबलिक भूमिका) से परे तथा कालमाया (नारायणी सृष्टि) के ब्रह्माण्ड से भी अलग बेहद में केवल ब्रह्म की स्वामिनी के मन अन्त:करण में पृथक् रास ब्रह्माण्ड रचाकर खेला गया था, (जिसे अक्षर ने सबलिक के महाकारण स्थान में अखण्ड किया था, जो वर्तमान में भी है) उसी को अखण्ड महारास लीला कहते हैं। इस बात का स्पष्टीकरण निश्चित रूप से तारतम्य ज्ञानाधार तारतम स्वरूप द्वारा ही किया गया है।

स्वरूप की तीसरी तथा उतक्रम से छट्ठी मुक्ति का स्थान वर्णन करते हैं।

महारास रमण करने के बाद सुबह ब्रह्म मुहूर्त में रास मण्डल के दुःख-सुख की याद आने पर द्वादश सहस्र सखियों में से सर्वाग्रगण्य सखी श्री इन्द्रावती ने बारह हजार सखियों की तरफ से प्रियतम वालाजी (श्रीकृष्ण) को कहा। जैसे -

हवे वाला हुं एटलुं मागुं, खिण एक अलगां न थैए।
जिहां अमने ब्रह नहीं, चालो ते घर जैए।।

अर्थ - हे वालाजी! हे प्रियतम (श्रीकृष्ण)जी!! अब तो मैं आप से इतना ही माँगती हूँ कि आप एक क्षण के लिए भी हम बारह हजार सखियों से अलग न हों। आप हमें ऐसे स्थान पर ले चलिए, जहाँ हमें त्रिकाल में कभी भी विरह सहन न करना पड़े। चलिए, ऐसे घर में चलें। उक्त प्रार्थना के पश्चात् - पुनः

इन्द्रावती कहे अमने वाला, भला रमाड्यां रास।
पछे ते घर मूलगे, वालो तेडी चाल्या सहु साथ।।
- (रास, प्र. ४/चौ. ४३,४६)।

अर्थ - अंततोगत्त्वा सर्वाग्रगण्य सखी श्री इन्द्रावती कहती हैं कि हे प्राणाधार! हे प्रियतम!! आपने हमें अति सुंदर ढंग से रास रमण कराया। तदुप्रांत श्री कृष्णजी हम समस्त सखियों को अपने साथ लेकर मूल घर अक्षरातीत परमधाम चले गए। तत्पश्चात् वह ब्रह्माण्ड ही ''पीछे जोगमाया को भयो पतन'' (प्रकाश हि., प्रगटवाणी, चौ.४२) समेट लिया गया।

❖ त्रयोदश - तरङ्ग ❖

★सत्स्वरूप ★

(अक्षर ब्रह्म का मन स्वरूप)

केवल ब्रह्म के धाम से परे चतुष्पाद विभूति का यह तुर्यपाद है, जिसे सत्स्वरूप कहते हैं। इसे मूल प्रकृति, इच्छाशक्ति, अचिन्त्य शक्ति अथवा कूटस्थ अक्षर ब्रह्म का मन स्वरूप, कारण अक्षर भी कहते हैं। सबलिक के सूक्ष्म में जिन चिदानन्द लहेरी का वर्णन हो आया है, वे इसी ''मूल प्रकृति'' के प्रतिनिधी स्वरूप हैं।

सत्स्वरूप के पाँच स्थान हैं। जैसे-स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और निर्मल चेतन।

१. स्थूल :- स्थूल के दो भाव हैं। जैसे ''शुद्धाशुद्ध द्वोयो मन'' अर्थात् शुद्ध स्थूल की शुद्ध और अशुद्ध दो मनोवृत्तियाँ हैं। अ.) अशुद्ध स्थूल - अशुद्ध स्थूल रूपी संबलिता सूरता ❁

❁ (१) शुद्धा संबलिता चेति चित्तवृत्तिर्द्विधेशितुः।
लीलावलोकने युक्ता शुद्धाऽन्याविश्वसर्जिनी।।

अन्वयार्थ - शुद्धा संबलिता चेति = अक्षर के मनस्वरूप सत्स्वरूप की दो वृत्तियों में से - १. शुद्धा वृत्ति = विलास की और २. अशुद्धा वृत्ति = संबलिता-ब्रह्माण्ड की रचना करने वाली है; चित्तवृत्तिर्द्विधेशितुः = सत्स्वरूप के दो प्रकार की चित्तवृत्तियाँ हैं; लीलावलोकने युक्ता = लीला अवलोकन करनेवाली विलास की शुद्धा; शुद्धाऽन्याविश्वसर्जिनी = शुद्धा

सबलिक के द्वारा अव्याकृत आधारित नारायणी सृष्टि की कारण भूता कार्य संचालन का यह मूलभूत है। ब.) शुद्ध स्थूल - शुद्ध संबलिता सुरता केवल ब्रह्म स्वरूप है।

२. सूक्ष्म :- सूक्ष्म में श्री परमधाम तथा अक्षरधाम की प्रतिभासिकी लीलायें हैं।

३. कारण :- कारण में भी श्री परमधाम तथा अक्षरधाम की प्रतिभासिकी लीलायें हैं।

४. महाकारण :- असराफील (अक्षर की जागृत बुद्धि) और जबराईल (अक्षर का जोश) के रहने का स्थान तथा ईश्वरी सृष्टि के सुरताओं के अधिष्ठात्री जीवों की मुक्ति का स्थान (मलायकी बहिस्त) है।

से अन्य अशुद्धा-विश्व रचना करनेवाली।

भावार्थ - अक्षर के मनस्वरूप, सत्स्वरूप की उभय वृत्तियों में से शुद्ध वृत्ति लीला अवलोकन करनेवाली विलास की है, तो अशुद्ध वृत्ति (संबलिता) विश्व ब्रह्माण्ड की रचना करनेवाली है।

दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत्।
लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः।।
तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।
विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः।।
- (भागवत, स्कन्ध ३/११/४०-४१)।

अन्वयार्थ - दशोत्तराधिकैर्यत्र = दस-दस गुने उत्तरोत्तर एक-दूसरे

५. <u>निर्मल चेतन</u> :- ब्रह्मात्माओं की सुरताओं के अधिष्ठात्री जीवों की मुक्ति का स्थान (अक्सी बहिस्त) है।

अतः स्थूल स्थान अव्याकृत, सूक्ष्म स्थान सबलिक, कारण स्थान केवल, महाकारण स्थान मूल प्रकृति और निर्मल चेतन स्वयं सत्स्वरूप हैं।

से हैं, चारों ओर; प्रविष्टः परमाणुवत् = पाँचवी क्षर समष्टि में आवरण सहित परमाणु के समान; लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये = दिखाई देते हैं अन्दर अन्य भी; कोटिशो ह्यण्डराशयः = करोड़ों ब्रह्माण्ड आश्रित हैं; तदाहुरक्षरं ब्रह्म = उसे अक्षर ब्रह्म कहा जाता है; सर्वकारणकारणम् = समस्त कारणों का कारण है; विष्णोर्धाम परं साक्षात् = यहीं पर विष्णु (अक्षर) भगवान का परमधाम है; पुरुषस्य महात्मनः = साक्षात् पुरान पुरुषों का महत्त्वशील धाम तो उस अक्षरधाम से भी परे है।

भावार्थ - जिस पाँचवी क्षर समष्टि के अन्तर्गत एक-दूसरे से दस-दस गुने विस्तार वाले अष्टावरण सहित करोड़ों ब्रह्माण्ड परमाणुवत् आश्रित दिखाई देते हैं, उसे समस्त कारणों का कारण कूटस्थ अक्षर ब्रह्म कहा जाता है। यही महाविष्णु भगवान के साक्षात् परात्मा का धाम है। उत्तम पुरुष-पुरान पुरुषों का महत्त्वशील धाम तो उससे भी परे है।

३. अव्यक्तोऽक्षरं इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम्।।
- (गीता, ८/२१)।

वस्तुतः सत्स्वरूप के पाँचों स्थानों में से अव्याकृत में सत्, चिद्, आनन्द में से सदंश की विशेषता का विस्तार है अर्थात् उसे सद्रूपाक्षर कहते हैं। सबलिक में चिदंश की प्रधानता होने से इसे चिद्रूपाक्षर कहा जाता है। केवल में सत्, चिद्, आनंद में से केवल आनन्द ही प्रधान होने के कारण यहाँ सभी लीलाएँ आनन्दांश की ही हैं। केवल धाम के यावत् पदार्थ आनन्द स्वरूप हैं।

उपरोक्त तीनों (अव्याकृत, सबलिक और केवल) में एक-एक की प्रधानता-विशेषता है, परंतु यहाँ सत्स्वरूप में तो सदंश, चिदंश और आनन्दांश तीनों का सामरस्य है। तीनों ही धर्म प्रधान रूप से विद्यमान होने के कारण, इसमें त्रिविध भावों का सदा-निरंतर उदय रहता है। यही कारण है कि सत्स्वरूप का आनन्द उत्तरोत्तर सभी विभूतियों से विशेष और विलक्षण है।

अन्वयार्थ - अव्यक्तोऽक्षरं इत्युक्तः = अव्यक्त अक्षर ऐसा कहा गया है; तमाहुः परमां गतिम् = उसी अविनाशी अक्षर नामक ब्रह्म भाव को परमगति कहा गया है; यं प्राप्य न निवर्तन्ते = जिसको प्राप्त होने पर मनुष्य वापस नहीं आता; तद्धाम परमं मम् = वह मेरा परम धाम है।

भावार्थ - जिस परमपद को अव्यक्त, अविनाशी, आदि-अनादि, अविकल्प, अचल इस तरह कहा गया है, उसी अविनाशी को परमगति कहा है। जिसे प्राप्त होने पर मनुष्य पुनः वापस नहीं आता, ''वह मेरा परम धाम है।''

इसी को विलास की सूरत *(इत अक्षर को विलस्यो मन) कहते हैं। इसमें व्याप्य, व्यापक दोनों भावों का उदय है। यह व्यापक भाव से तो चारों विभूतियों में प्रकाशित है और व्याप्य भाव से मूल स्वरूप में उदीयमान है। यथा-

''तुरीयपादस्तु तुरीयतुरीयं तुरीयातीतं च''

- (त्रिपाद वि. उ)।

तुरीयपाद महाकारण और तुरीयातीत निर्मल चेतन ये दोनों स्थान स्वतंत्र रूप से निरंतर प्रकाशित हैं।

सत्स्वरूप के महाकारण (मूल प्रकृति) में कुमारिकाओं (ईश्वरी सृष्टि) की दूसरी तथा उतक्रम से सातवीं मुक्ति का

---

* यथा -

एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धयेवाक्षरं परम्।
एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।

- (कठो., अ.१, वल्ली २, श्लोक १६)।

अन्वयार्थ - एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म = यह अक्षर ही तो ब्रह्म है और; एतद्धयेवाक्षरं परम् = इस अक्षर ब्रह्म से परे परब्रह्म हैं; एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा = उक्त प्रकार से अक्षर को जानकर; यो यदिच्छति तस्य तत् = जो जिसे चाहता है, वह वहाँ जाता है।

भावार्थ - यह कूटस्थ अक्षर ही ब्रह्म है। इस अविनाशी कूटस्थ अक्षर से भी परे परब्रह्म अक्षरातीत हैं। यसर्थ इन दोनों को अलग-अलग जानकर, जो जिसे चाहता है वह वहीं जाता है।

स्थान* है। कूटस्थ अक्षर ब्रह्म की सुरताओं को कुमारिका नाम से पुकारते हैं। अक्षर की इन्हीं सुरताओं ने सखी रूप में होकर खेल में श्री अक्षरातीत का आनन्दानुभव किया और कर रही हैं। इनकी संख्या चौबीस हजार मानी गयी है। जगत् के बीच जिन-जिन पवित्रात्माओं का आश्रय लेकर इन सुरताओं ने असत्, जड़, दु:ख रूपी जगन्नाटक देखा है, वे सभी जीव प्रतिबिम्ब रूप से यहीं पर प्राप्त होंगे * और समष्टिरूपेण सत्स्वरूप ही धारण करके यहाँ नित्यानन्द का

---

* नूर रास भी बरन्यो ना गयो, तो भिस्त बरनन क्यों होए।
बोहोत बड़ी तफावत, रास भिस्त इन दोए।।
-(सनंध, प्र. २९/चौ.३२)।

भावार्थ - जब रास मण्डल की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सका, तो कथित बहिस्तों की महिमा का वर्णन करने के लिए साधन कहाँ से जुटाऊँ। बहिस्तों की महिमा का वर्णन करने के लिए शब्दकोष में शब्दों का अभाव हो गया है। अत: मैं कैसे वर्णन करूँ। इन उभय स्थानों (रास और भिस्त) की शोभा एवं महिमा में वट वृक्ष तथा वट बीज सदृश अन्तर है, क्योंकि रास की महिमा और सुख स्वप्न का है, तो भिस्त की महिमा और सुख जागृत का है।

* **(१) आखर भिस्तों का बेवरा, जो नैयां होसी चार।**
जो होसी बखत क्यामत के, तिनका कहूं निरवार।।
-(खुलासा, प्र.५/चौ. १३)।

साक्षात् अनुभव करेंगे। अतः

✢ यं यं जीवमधिष्ठाय चिदाभासमयं मुने।
वासनावासितं कृत्वा वासनाः स्वगृहं यदा।।
गमिष्यन्ति तदा ते ते चिदाभासमया अपि।
आनन्दावरणव्याप्तं गोलोकाच्च परं पदम्।।

- (पुराण संहिता)।

भावार्थ - अब अंतिम चार बहिस्तों का ब्योरा भी दे दें। ये चारों नवस्थापित बहिस्तें होंगी तथा इनकी स्थापना क्यामत अर्थात् जागनी (ब्रह्मांड) के दौरान होगी, ऐसा कुरान ग्रन्थ में लिखा है। अब इन बहिस्तों में पहुँचने वालों का भी स्पष्टीकरण कर दें।

(२)भिस्त अव्वल रूहों अकस, ए जो भिस्त नई।
भिस्त होसी दूजी फिरस्तों, जो गिरो जबरूत से कही।।

-(खुलासा, प्र. ५/चौ. १४)।

भावार्थ - जिन उत्तम संसारी जीवों में ब्रह्मात्माओं की सुरता का प्रतिबिंब पड़ा होगा या ऐसा कहें जिनकी अक्स (पंचभौतिक शरीर) में सुरता का अवतरण हुआ होगा, वे सभी जीव नवस्थापित पहली बहिस्त को प्राप्त होंगे। अक्षर धाम से उतरी हुई ईश्वरी सृष्टि की सुरता को धारण करने वाले जीव भी नवस्थापित दूसरी बहिस्त को प्राप्त होंगे।

✢ अन्वयार्थ - यं यं जीवमधिष्ठाय = जिन-जिन जीवों को अधिष्ठान बनाया है; चिदाभासमयं मुने = चिदाभास रूपी सुरताओं ने

भावार्थ - कैलाशपति शिवजी व्यासजी से मुक्ति के स्वरूप का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि हे मुने! जिन-जिन जीवों को अधिष्ठान बनाकर अक्षरातीत ब्रह्मधाम की ब्रह्मवासनाएँ, इस स्वप्निक प्रपंच को देख रही हैं अर्थात् जो जीव उनके साथ में हैं, वे सभी जीव भी, ब्रह्मवासनाओं के ब्रह्म धाम चले जाने के पश्चात् आनन्दातिआनन्द से पूर्ण उस परम पद को प्राप्त होंगे, जो गोलोक से भी परात्पर है।

इससे परे निर्मल-चेतन का स्थान है। यहीं पर ब्रह्मसृष्टियों के प्रतिभासिक प्रथम दर्जे का मुक्ति स्थान ❋ है, जिसे उतक्रम

(ब्रह्म-ईश्वरी की) हे मुने! व्यासजी; वासनावासितं कृत्वा = वासनाओं ने अधिष्ठान (वासना) बनाकर खेल देखा; वासना: स्वगृहं यदा = ब्रह्म-ईश्वरी वासनाओं के अपने घर लौट जाने के पश्चात् भी वे अधिष्ठात्री जीव आनन्द से पूर्ण, परमपद (सत्स्वरूप का महाकारण और निर्मल चेतन) को प्राप्त करेंगे; गमिष्यन्ति तदा ते ते = उन-उन स्थानों को क्रमशः जायेंगी (प्राप्त करेंगी); चिदाभासमया अपि = वे चिदाभास, अधिष्ठात्री वासनाएँ भी; आनन्दावरणव्याप्तम् = पूर्णानन्द से ओत-प्रोत उस परमपद-धाम को; गोलोकाच्च परं पदम् = जो गोलोक-सबलिक से भी परे सत्स्वरूप में है।

❋ बड़ी भिस्त भी याही से, जो कही कजा के मांहें।
तिन भिस्त के नूर की, बात बड़ी है तांहें।।
- (सनंध, प्र. २९/चौ. ३१)।

से गिनने पर आठवीं मुक्ति का स्थान कहा है। जिस तरह ईश्वरी सृष्टि-कुमारिकाओं ने जिन पवित्र जीवात्माओं को अपना अधिष्ठान बनाकर खेल देखा, उसी तरह ब्रह्मसृष्टि की सुरताओं ने भी जिन-जिन पवित्र जीवात्माओं को अपना अधिष्ठान बनाकर अपना मिथ्या मायानाटक देखने का मनोरथ पूर्ण किया, वे सभी जीवात्माएँ सत्स्वरूप में तन्मय होकर प्रतिबिम्ब रूप से यहीं प्राप्त होंगी तथा नित्य निरंतर परमानन्द का अनुभव करेंगी। इसके सिवाय चित् शुद्धि वाले जो अन्य जगजीव हैं, जो तारतम्य ज्ञान से प्रबुद्ध (जाग्रत) होकर ब्रह्मसृष्टियों का-सा आचरण करेंगे, वे सब अखण्ड में यथाक्रम मुक्ति प्राप्त करेंगे।

भावार्थ - अट्ठाइसवें कलियुग के निष्कलंकावतार(इमाम मेंहदी) द्वारा जागनी (क्यामत) के वक्त में पाप-पुण्य विषय का न्याय करके जगत के जीवों को मिलने वाले आठ मुक्ति स्थानों (बहिस्तों) में से जो अक्सी (गोलोकाच्च परं पदम्) बहिस्त (मुक्ति स्थान) की बात कही गई, वह (सत्स्वरूप के निर्मल चेतन के) भी इसी अक्षर ब्रह्म के मन अन्त:करण के निर्मल चेतन में है, जो अक्षर ब्रह्म के नूर (शक्ति) से बनी हुई है। इस बहिस्त को आठों बहिस्तों में से उच्च कोटी का बड़ा मुक्ति स्थान कहा गया है। यह बहिस्त ब्रह्मात्माओं की सुरताओं द्वारा अधिष्ठान बनाये गये जीवों को प्राप्त है।

जो कदी ÷ जीवे संग किया, + ताको करूं ना मेलो भंग।
सो रंगे भेलूँ वासना, वासना सत को अंग।।

-(प्रकाश हिंदी, प्र. २३/ चौ. ६४)।

ब्रह्मसृष्टि को ऐसो नूर ×, जो दुनिया थी बिना अंकूर।
ताये नये अंकूर जो कर, किये नेहेचल देख नजर।।

- (प्रकाश हिंदी, प्र.३७/ चौ. १०३)।

÷ पाठ भेद -किन

+ श्रीमन्निजानन्द सद्गुरु स्वरूप का प्रण है कि - 'नारायणी सृष्टि की वे आत्माएँ, जिनमें ब्रह्म-ईश्वरी की सुरताएँ प्रवेश नहीं हैं, यदि वे भी ब्रह्म-ईश्वरी की सुरता प्रविष्ट जीव को इस तरह कि, इसमें ब्रह्मसृष्टि की सुरता अवश्य प्रविष्ट है या इसमें ईश्वरी की सुरता अवश्यमेव प्रविष्ट है, पहचानकर, निश्चित कर उनके साथ प्रेमाचरण में ओतप्रोत रहेंगे, तो उन्हें भी इन सुरता प्रविष्ट जीवों की मुक्ति स्थान के सुखानन्द में ही पहुँचाऊँगा। उनकी प्रेममयी दोस्ती को मैं भंग होने नहीं दूँगा। अतः उनका प्रण था कि ब्रह्मसृष्टि की सुरता प्रविष्ट जीवों के साथ प्रेमाचरण में रहने वालों को सत्स्वरूप के निर्मल चेतन में और ईश्वरी सृष्टि की सुरता प्रविष्ट जीवों के साथ प्रेमाचरण में रहने वालों को सत्स्वरूप के महाकारण के सुखानंद में शामिल करूँगा।'

× ब्रह्मसृष्टि में ऐसी ताकत-शक्ति है कि उन्होंने अक्षर के स्वप्निक जीवों को, जो स्वप्न द्रष्टा के जागृत होते ही अपना अस्तित्व खो बैठते हैं, ऐसे मूल से ही अस्तित्त्वहीन जीवों को भी अपनी दृष्टि-नजर मात्र से

इन उक्त वर्णित मुक्तियों को जो जीव प्राप्त करेंगे, उनके स्वरूप वहाँ पर सत्य (मतलब वहीं के सुख) के अनुकूल होंगे। वहाँ की सम्पूर्ण सामग्रियाँ, महल, मंदिर, बाग-बगीचे, वस्त्र-आभूषण, शय्या-सिंहासनादि तथा सम्पूर्ण प्रकार के भोग्य पदार्थ सत्स्वरूपी दिव्यलोकमय होंगे। अक्षर-पुरुष का देश अखण्ड और चिन्तामणि भूमिका है। वहाँ जब जिस वस्तु की इच्छा की जाए, वह उसी क्षण प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार वे जीव अजर-अमर, ज्ञानमय सत्स्वरूप होकर श्याम-श्यामाजी तथा ब्रह्मसृष्टियों के नित्य नये-नये दर्शन-स्पर्शन से परमानन्द सुधा-सिन्धु में तल्लीन रहेंगे।

विष्णु रूप कृष्ण के भक्त हों अथवा गोलोकवासी कृष्ण के ही भक्त क्यों न हों, वे इस तत्त्व को समझ ही नहीं पाते, प्राप्त करना तो दूर की बात है। इसका कारण यह है कि अपने इष्ट से परे और भी कुछ है, ऐसी कल्पना ही उनके मन में कहाँ आ पाती है? इसी कारण इस परम वास्तविक तत्त्व से वे हाथ धो बैठते हैं।

<u>विशेष सूचना</u> :-

अब तक स्वप्निक नश्वर हद से परे कूटस्थ अक्षर पुरुष के देश-बेहद भूमिका में जिस आठ प्रकार की मुक्तियों का वर्णन

ही अस्तित्त्व युक्त बना दिया और उन्हें कूटस्थ अक्षर पुरूष के अविनाशी देश (बेहद) में सच्चिदानन्द गुण युक्त अखण्ड परमानन्द सुखप्रद आठ प्रकार की मुक्ति स्थान में अखण्ड कर दिया।

कर आये हैं; वे सभी मुक्तियाँ प्रतिबिम्बित छायात्मिकायें हैं। नारायणी सृष्टि के नश्वर मायावी वे जीव जो स्वर्ग, वैकुण्ठ, कैलाश, निराकारादि नश्वर सुखों की चाह रखते हैं, उन्हें यह अखण्ड-अविनाशी, सच्चिदानन्द गुणयुक्त मुक्ति प्रदान की गई है। उन स्वर्ग-वैकुण्ठ, कैलाशादि के सुख और गुणादि के आगे इन मुक्ति स्थानों के सुख, गुण अवर्णनीय-अकथनीय, अपार हैं। परन्तु इनसे भिन्न दो महामुक्तियाँ और हैं, जो अक्षर और उत्तम पुरुष परमात्मा संबंधी वास्तविक हैं तथा तत्संबंधी सुख-आनन्दादि से भी यथार्थ रूपेण वास्तविक हैं। ब्रह्म-ईश्वरी सृष्टियों के वास्तविक धाम के वर्णन विषय इंगित मात्र इस पुस्तिका में किया जायेगा। इस पुस्तिका का मुख्यः ध्येय क्षर एवं कूटस्थ अक्षर अर्थात् उभय पुरुषों का कार्य-कलाप स्पष्ट करना है। उसी मुताबिक इस पुस्तिका में वर्णन है।

✤ चतुर्दश - तरङ्ग ✤

★ कूटस्थ अक्षर ★

(यह परलोक की राजधानी रूप है)

आद्य वेदों से लेकर शास्त्र, पुराण, कुरान, बाईबल एवं उपनिषदों का तत्त्वतः परिशीलन करने वाले मनीषियों, ब्रह्मविद् पुरुषों के 'ब्रह्मज्ञान के समक्ष तो यह अज्ञात नहीं है कि - "अगणित-असंख्य ब्रह्माण्डों का उदय-लय, उत्पत्ति-विनाश

अक्षर ब्रह्म और धाम विषय -

निम्नोक्त शास्त्र प्रमाण इंगित कर रहे हैं

यथा -

१. यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये।।
- (गीता, ८/११)।

अन्वयार्थ - यदक्षरं वेदविदो वदन्ति = जिस सच्चिदानन्द ब्रह्मपद को, अविनाशी नाम से वेद को जानने वाले विद्वान् लोग कहते हैं एवं; विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः = प्रवेश करते हैं, जिसमें यत्नशील महात्माजन आसक्ति रहित; यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति = जिस परमपद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करनेवाले करते हैं; तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये = उस परमपद को मैं, तेरे लिए संक्षेप में कहूँगा।

भावार्थ - वेदज्ञाता, जिस चिदानन्द ब्रह्मपद को अविनाशी कहकर

का मूलत: कारण अक्षर ब्रह्म (पुरुष) ही है।'' यथा -

विकारैः सहितोयुक्तैर्विशेषादिभिरावृतः।
अण्डकोशोबहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृत।।
दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत्।
लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः।।
तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।।

- (भागवत, स्कन्ध ३/११/३९,४०,४१)।

भावार्थ - सोलह विकारों, जैसे - दस इन्द्रियाँ, पाँच तत्त्व तथा मन से मिलकर बना हुआ यह अण्डाकार चौदह लोक

पुकारते हैं। जिस परमपद में आसक्ति रहित ब्रह्मचर्य आचरण करनेवाले यत्नशील महात्माजन प्रवेश करना चाहते हैं, उसे मैं तेरे लिए संक्षेप में कहूँगा।

२. अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं पूर्णब्रह्मसनातनम्।
अनादिमध्यनिधनं निर्द्वन्द्वकर्तृशाश्वतम्।

- (महाभारत)।

अन्वयार्थ - अक्षरं ध्रुवमेवोक्तम् = कूटस्थ अक्षर ब्रह्म ही कहा गया है; पूर्णब्रह्मसनातनम् = जो सनातन पूर्णब्रह्म के द्वारा; अनादिमध्यनिधनम् = आदि मध्य रहित; निर्द्वन्द्वकर्तृशाश्वतम् = सनातन रूप से निर्द्वन्द्व सम्पूर्ण विश्व का उदय-लय करते हैं।

भावार्थ - जो सनातन पूर्णब्रह्म द्वारा आदि-मध्य रहित सनातन रूप से निर्द्वन्द्व सम्पूर्ण विश्व का उदय-लय करता है, उसे कूटस्थ अक्षर ब्रह्म

रूपी ब्रह्माण्ड पचास करोड़ योजन लंबा-चौड़ा विस्तृत है, जिसे बाहर से आठ आवरणों ने घेर रखा है। इस पाँचवी क्षर समष्टि के अंतर्गत एक दूसरे से उत्तरोत्तर दस-दस गुना विस्तारवाले अष्टावरण सहित करोड़ों ब्रह्माण्ड परमाणुवत् आश्रित दिखाई देते हैं। इन्हें ही समस्त कारणों का कारण रूप कूटस्थ अक्षरब्रह्म कहा जाता है।

अक्षरातीत पूर्णब्रह्म के अंगभूत (सदंश) कूटस्थ अक्षर ब्रह्म हैं। इनकी समस्त लीलाएँ बालोचित हैं। वे चौबीस हजार कुमारिका सखियों तथा श्री लक्ष्मी जी सहित नित्य-निरंतर,

---

ही कहा गया है।

३. लक्ष्यन्तेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः।
तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्व कारणकारणम्।।
- (भागवत, ३/११/४०,४१)।

अन्वयार्थ - लक्ष्यन्तेऽन्तर्गताश्चान्ये = दिखाई देता है, जिसके अन्तर्गत असंख्य अन्य ब्रह्माण्डों की; कोटिशो ह्यण्डराशयः = करोड़ों शक्तियाँ निश्चित रूप से (अशुद्ध सुरताओं के); तदाहुरक्षरं ब्रह्म = उस अक्षर ब्रह्म को - इस प्रकार; सर्व कारणकारणम् = संपूर्ण सृष्टि के कारण-कार्य रूप है (अशुद्ध सुरता), तो अक्षर ब्रह्म कारण रूप हैं।

भावार्थ - उस अक्षर ब्रह्म के अन्तर्गत निश्चित रूप से अन्य करोड़ों असंख्य ब्रह्मांड दिखाई देते हैं। इस प्रकार उनकी अशुद्ध सुरता संपूर्ण सृष्टि की कार्य-कलाप रूप है, तो अक्षर ब्रह्म कारण रूप है।

नये-नये बालविनोद किया करते हैं। इनके सत्स्वरूप, केवल, सबलिक और अव्याकृत ये चार विभूति स्वरूप हैं। अव्याकृत नश्वर नारायणी सृष्टि के साथ प्रतिबिंबित है। अन्य तीनों विभूतियाँ नेहेचल-सृष्टि से अलग हैं। ये सबलिक स्वभाव चिद्रूप अक्षर के द्वारा एक पल के विक्षेप में अहंकार रूपी अव्याकृत के माध्यम से असंख्य असत्, जड़, दुखात्मक जगत नाटक की लीला का अवलोकन करते रहते हैं। इसलिए इन्हें जगत का निमित्तोपादान कारण कहा जाता है।

अक्षर पुरुष-कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के धाम में जितने भी यावत्

---

४. अचिन्त्यमक्षरं यत्तु तुरीयं च सदास्थितम्।
यद्गत्त्वा न निवर्तन्ते नरास्तत्रैव तत्पदम्।।
अनेकसृष्टिरचनाः सन्ति तस्यैव लीलया।।
- (भविष्य पु., प्रतिसर्ग पर्व, अ. २/५)।

अन्वयार्थ - अचिन्त्यमक्षरं यत्तु = अचिन्त्य अक्षर अव्याकृत में यह जो; तुरीयं च सदास्थितम् = महाकारण स्वरूप में सदा-स्थित गोलोक धाम है; यद्गत्त्वा न निवर्तन्ते = जिसे प्राप्त होने पर पुनः आवागमन नहीं होता; नरास्तात्रैव तत्पदम् = मनुष्य उस पद को प्राप्त कर; अनेकसृष्टिरचनाः सन्ति = अनेकों सृष्टियों की रचना (उदय-लय) होते रहती है; तस्यैव लीलया = उनकी लीला मात्र से।

भावार्थ - अचिन्त्य अक्षर पुरुष अव्याकृत का चतुष्पाद, जो महाकारण स्वरूप में सदा-सर्वदा अखण्ड नित्य गोलोक धाम स्थित है,

पदार्थ हैं, सब आत्मस्वरूप चेतन और प्रेम स्वरूप हैं। यही धाम कुमारिका-ईश्वरी सृष्टि (अक्षर ब्रह्म की सुरताओं का) का वास्तविक निजधाम (मुक्ति स्थान)है, जिस निजधाम से जगत नाटक देखने के लिए वे खेल में अवतरित हुईं हैं।

जिस धाम में जाने पर आवागमन नहीं होता, उसी को मनुष्य परमपद कहते हैं। अत: अनेकों प्रकार की सृष्टि रचना रूपी लीला उसी से होती है। पुन:

इन आतम को घर एही अक्षर है, ए तो पारब्रह्म परखाया ।
ए जुध जीत्या मैं सेहेज, सतगुरुजी की दया ।।

अब अक्षर के पार मैं जुध बनाऊं, सकल आउध अंग साजूं।
प्रेम की सेन्या प्रगट चलाऊं, कंठ अक्षरातीत मिलाऊं ।।

- (किरंतन, प्र. १५/चौ. १०,११)।

अर्थ - इन सभी कार्यरूपी सृष्टि की आत्माओं का घर कारण रूपी कूटस्थ अक्षर धाम है। इन्हीं कूटस्थ अक्षर ब्रह्म को सृष्टि के लोग परब्रह्म परमात्मा कहते हैं। मेरे ब्रह्मविद सद्‌गुरु की परम कृपा प्राप्त कर मैं अनायास ही अक्षर से भी आगे जान पाया तथा बढ़ पाया।

अब मैं कूटस्थ अक्षर ब्रह्म (सृष्टि कर्ता) से भी परे जाने की तैयारी करता हूँ। इसके आगे प्रेम की सेना-शील-संतोष, हिम्मत, करूणा, श्रद्धा - विश्वास, प्रेम आदि के साथ आगे बढ़कर अक्षरातीत पूर्णब्रह्म परमात्मा से जाकर मिलना है।

❖ अक्षरातीत पूर्ण ब्रह्म ❖

।। (दिव्य परमधाम) ।।

यत्र ज्योतिरजस्त्रं यस्मिंल्लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षिते।।

- (ऋग्वेद)।

वे परात्पर सर्वातीत सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा, जो कूटस्थ अक्षर ब्रह्म से भी परे हैं, उनके निज स्वरूप का

❖ अक्षरातीत ब्रह्म और ब्रह्मधाम विषय ❖

निम्नोक्त शास्त्र प्रमाण इंगित कर रहे हैं

यथा -

१. यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद,
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक:
-तेनैदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्।।

- (श्वेताश्वतरोपनिषद, अ. ३, श्लो. ९)

अन्वयार्थ - यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद = जिससे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है; यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् = जिससे बढ़कर कोई भी न अधिक है, न महान् ही है; वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक: = जो अकेला ही वृक्ष की भाँति निश्चल भाव से आकाशवत् स्थित और प्रकाशमान है; -तेनैदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् =

गुह्यातिगुह्य रहस्य तथा सुदिव्य शोभा से परिपूर्ण स्वयंसिद्ध प्रकाशित स्वरूप परब्रह्म धाम, जिसे "दिव्य बह्मपुर" परमधाम

उस परम पुरुषोत्तम से यह सम्पूर्ण लोक-परलोक परिपूर्ण है।

भावार्थ - जो परात्पर पूर्णब्रह्म परमात्मा, उत्तम पुरुष, अद्वैत ब्रह्म हैं, वे सर्वातीत, स्वयंसिद्ध, महानातिमहान्, नेहेचल-निष्क्रिय, आकाशवत् और प्रकाशवान हैं, जिनसे बढ़कर होने की तो बात ही क्या, जिनके समान भी कोई नहीं हैं, सृष्टि के कारणों का कारण कूटस्थ अक्षर पुरुष भी, जिनके आगे कोट्यांश भाग है, तो अन्य की तो बात ही क्या! उनकी हुकूमरूपी सत्ता पर लोक-परलोक परिपूर्ण और आधारित हैं, जिन्हें अक्षरातीत पुरुषोत्तम परमात्मा नाम से पुकारा जाता है।

२. यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।
- (गीता, १५/१८)।

अन्वयार्थ - यस्मात्क्षरमतीतोऽहम् = क्योंकि मैं नाशवान् जड़वर्ग क्षरपुरुष आदिनारायण से तो सर्वथा अतीत अलग हूँ, और; अक्षरादपि चोत्तमः = अक्षर ब्रह्म से भी मैं अलग उत्तम हूँ; अतोऽस्मि लोके वेदे च = इसलिए लोक में और वेदों में (भी); प्रथितः पुरुषोत्तमः = पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ।

भावार्थ - मैं क्षरपुरुष - हिरण्यमय गर्भ - आदिनारायण (महाविष्णु) के नाशवान् जड़वर्ग के क्षेत्र से तो सर्वथा अलग हूँ, कूटस्थ अक्षर पुरुष जो सृष्टि के कारणों का कारण रूप है, उससे भी अतीत और उत्तम हूँ। इसीलिए वेदों द्वारा लोक में

आदि नामों से सांकेतिक किया गया है।

जिस प्रकार वे अद्वैत परब्रह्म परमात्मा परात्पर, पूर्णात्पूर्ण सच्चिदानन्द स्वरूप ''अनन्ताऽद्वैत'', सदा-सर्वदा चैतन्य,

पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ।

३. चिदादित्यं किशोराङ्गं परे धाम्नि विराजितम्।
स्वरूपं सच्चिदानन्दं निर्विकारं सनातनम्।।
- (ब्रह्म वै. पुराण)।

अन्वयार्थ - चिदादित्यं किशोराङ्गम् = आदित्य सूर्य का-सा प्रकाशवन्त् चिद्‌घन स्वरूप किशोरावस्था का; परे धाम्नि विराजितम् = परात्पर गतिवाले अक्षरातीत ब्रह्मधाम में विराजमान हैं; स्वरूपं सच्चिदानन्दम् = सत्, चिद, आनन्द गुणों से युक्त परमात्मा अद्वैत प्रेमास्पद स्वरूप; निर्विकारं सनातनम् = प्राकृतिक विकारों से रहित, सृष्टि सनातन से भी पूर्व सनातन स्वरूप आदि-अनादि एक रस हैं।

भावार्थ - परात्पर अक्षरातीत, परमधाम में विराजमान जो चिद्‌घन तेजराशि, सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा हैं, वो 'किशोरावस्था' में हैं। उनका किशोराङ्ग स्वरूप निर्विकार है, प्राकृतिक नहीं। वे स्वरूप जरा-व्याधि तथा जन्म-मृत्यु आदि भयों से मुक्त हैं। पुनः सनातन, आदि-अनादि, एकंरस, नित्य अविनाशी हैं तथा उनके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग चेतनघन, नित्य विग्रह सच्चिदानन्द विलक्षण गुणयुक्त शोभायमान हैं।

दिव्यप्रकाश पुञ्ज, अनन्त एकरस, सर्वोत्कृष्ट, सर्वाध्यक्ष, सर्वाश्रय, स्वयंसिद्ध, निरपेक्ष, विराजमान हैं; उसी प्रकार उन परमात्मा का ''ब्रह्मपुर'' परमधाम भी सदा सर्वदा एकरस दिव्य

४. पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
- (वृहदारण्यक उ.)।

अन्वयार्थ - पूर्णम् = अक्षरातीत सच्चिदानन्द घन; -अदः = वे परब्रह्म; पूर्णम् = सभी प्रकार से पूर्ण हैं; इदम् = वह ब्रह्मधाम भी पूर्ण ही है, क्योंकि; पूर्णात् = उस पूर्णब्रह्म से ही; पूर्णम् = ब्रह्मधाम लोक दोनों को पूर्ण; उदच्यते = कहा गया है; पूर्णस्य = पूर्ण को; पूर्णम् = पूर्ण से; आदाय = निकाल लेने पर भी; पूर्णम् = पूर्ण; एव = ही; अवशिष्यते = शेष रहता है।

भावार्थ - वे अक्षरातीत सच्चिदानन्दघन परब्रह्म पुरुषोत्तम परमात्मा सदा-सर्वदा, सभी प्रकार से परिपूर्ण हैं। वह ब्रह्मधाम और ब्रह्मलोक उस परब्रह्म से ही पूर्ण है, क्योंकि ब्रह्म, ब्रह्मधाम और ब्रह्मलोक ''बाह्याभ्यान्तरो ह्यजः'' अन्दर तथा बाहर से समान गुणयुक्त होने के कारण वहाँ पूर्ण में से पूर्ण का उपभोग कर लेने के बाद भी पूर्ण ही अवशेष रहता है, उसमें न्यूनता नहीं आती। इस प्रकार वह यत्र-तत्र-सर्वत्र पूर्णात् पूर्ण गुणेन् परिपूर्ण है।

५. विश्वरूपं च चैतन्यमेतन्मायास्वरूपकम्।
मायापरं भवेदब्रह्म तत्परं ब्रह्मकेवलम्।।
-(वज्रसूचि वेदान्त)।

शोभा से परिपूर्ण, स्वयंसिद्ध, नित्य-चैतन्य, सनातन सामग्रियों से सम्पन्न, सर्व प्रकार के आनन्द से भरापूरा, चिद्घन स्वरूप में अवस्थित है।

अन्वयार्थ - विश्वरूपं च चैतन्यम् = सारी सृष्टि के विश्व रूप आदिपुरुष से लेकर, चौरासी लाख योनियों के चेतन; एतन्मायास्वरूपकम् = यावत् माया से उत्पन्न चेतन, स्वप्निक व क्षणभंगुर गुणयुक्त हैं; मायापरं भवेदब्रह्म = इन मायेश्वर आदिनारायण क्षर पुरुष से परे कूटस्थ अक्षर पुरुष हैं; तत्परं ब्रह्मकेवलम् = उस कूटस्थ अक्षर पुरुष से परे उत्तम पुरुष अद्वितीय ब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा हैं।

भावार्थ - सारे विश्व के आदिपुरुष - नारायण से लेकर चौरासी लाख योनियों के चेतन, यावत् मायाजन्य, स्वप्निक, क्षणभुंगर (अस्तित्वहीन) हैं। इस मायेश्वर आदिनारायण-क्षर पुरुष से परे कूटस्थ अक्षर पुरुष हैं। उत्तम पुरुष अद्वैत ब्रह्म स्वरूप परमात्मा तो कूटस्थ अक्षर पुरुष से भी परात्पर अक्षरातीत धाम में हैं।

६. नारायणादि जीवान्ता सृष्टिर्मोहावधौ स्थिता।
तत्परं त्वक्षरं ब्रह्माक्षरातीतं तु तत्परम्।।
-(पुराण संहिता)।

अन्वयार्थ - नारायणादि जीवान्ता = आदिनारायण से उत्पन्न चौरासी लाख योनियों के सभी जीव; सृष्टिर्मोहावधौ स्थिता = यावत् सृष्टि माया मोहित त्रिगुणात्मक - माया के परवश है; तत्परं त्वक्षरं ब्रह्म = उस माया परवश आदिनारायण क्षर पुरुष से परे कूटस्थ अक्षर पुरुष (ब्रह्म) हैं; अक्षरातीतं तु तत्परम् = अक्षरातीत उत्तम पुरुष, सच्चिदानन्द परमात्मा

अतः 'सः बाह्याभ्यान्तरो ह्यजः' अन्दर-बाहर एकरस 'ह्यक्षरात्परतः परः' कूटस्थ अक्षर ब्रह्म धाम से परे अक्षरातीत परमधाम ''दिव्य ब्रह्मपुर'' है।

तो उस कूटस्थ अक्षर पुरुष से भी परे अक्षरातीत में हैं।

भावार्थ - क्षरपुरुष - आदिनारायण से लेकर सृष्टि के यावत् चौरासी लाख योनि आदि त्रिगुणात्मक सृष्टि माया मोहित एवं परवश है। इस मायावी सृष्टि के अधिश्वर क्षरपुरुष से परे कूटस्थ अक्षर पुरुष और कूटस्थ अक्षर पुरुष से भी परे अक्षरातीत उत्तम पुरुष सच्चिदानन्द परमात्मा ''एकोऽद्वितीयं ब्रह्म'' हैं।

७. परमात्मा परं ज्योतिः परं धाम परागतिः।
सर्ववेदान्तसारोऽहं सर्वशास्त्रसुनिश्चितः।।
-(तेजबिंदूपनिषद,६/६७)।

अन्वयार्थ - परमात्मा परं ज्योतिः = परात्पर सच्चिदानन्दघन परमात्मा परम दिव्य प्रकाशवन्त् स्वरूप में; परं धाम परागतिः = परात्पर ''सा काष्ठा सा परागतिः'' रूप अक्षरातीत ब्रह्मपुर के परमधाम में विराजमान हैं। उन परमात्मा का परमधाम; सर्ववेदान्तसारोऽहम् = अर्थात् सर्व वेद-वेदान्तों का सार रूप तथा; सर्वशास्त्रसुनिश्चितः = अर्थात् सम्पूर्ण धर्म शास्त्रों द्वारा सुनिश्चित किया हुआ 'एकोऽद्वितीयं ब्रह्मधाम' है।

भावार्थ - दिव्य परमप्रकाशवन्त् स्वरूपी परमात्मा, पुरुषोत्तम सच्चिदानन्द गुणयुक्त, परात्पर अक्षरातीत ब्रह्मधाम रूप परमधाम में ''बाह्याभ्यन्तर ह्यजः'' रूपेण विराजमान हैं। उक्त अक्षरातीत ब्रह्मधाम

उक्त दिव्य ब्रह्मपुर में अक्षरातीत पुरुषोत्तम श्रीराजजी महाराज द्वादस सहस्र ब्रह्मात्माओं (सखीगणों) सहित, अपनी

रूपी लक्ष्य सर्व वेदवेदान्तों का सार रूप तथा सम्पूर्ण धर्मशास्त्रों द्वारा सुनिश्चित किया हुआ है।

८. दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः।।
-(अथर्ववेद, शौनकी शाखा-मुण्डकोपनिषद)।

अन्वयार्थ - दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः = निश्चय ही दिव्य पूर्ण पुरुष आकारवन्त अवयवों से रहित विलक्षण गुणयुक्त; सबाह्याभ्यन्तरः हि अजः = समस्त ब्रह्मलोक के बाहर और भीतर भी व्यापक, जन्मादि विकारों से रहित अजर-अमर एकरस; अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः = प्राकृत मन-प्राणों से रहित होने के कारण, सर्वथा विशुद्ध साकारवन्त् हैं; हि अक्षरात् परतः परः = अविकल्प कूटस्थ अक्षर पुरुष से भी परे और अति-श्रेष्ठ उत्तम हैं।

भावार्थ - वे दिव्य उत्तम पुरुष परमात्मा निःसंदेह प्राकृत आकार रहित विलक्षण आकारवन्त् और समस्त ब्रह्म लोक के बाहर एवं भीतर परिपूर्ण हैं। वे जन्म-मरण आदि विकारों से रहित, आदि-अनादि सर्वथा विशुद्ध हैं। उनकी मन-प्राण एवं इन्द्रियाँ प्राकृत गुणों से रहित विलक्षण गुणयुक्त हैं। ऐसे विलक्षण मन-प्राण, इन्द्रियों, अन्तःकरणादि से युक्त 'शुद्ध साकार' स्वरूपी पुरुषोत्तम परमात्मा सच्चिदानन्द गुणयुक्त अक्षर से भी परे अक्षरातीत ब्रह्मपुर के ब्रह्मधाम में विराजमान हैं।

आनन्द स्वरूपा सहजाशक्ति श्री श्यामा महारानीजी के साथ नित्य-नवतन लीलाएँ किया करते हैं।

९. न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।
-(गीता, १५/६)।

अन्वयार्थ - न तद्भासयते सूर्यः = उस परमपद-परमधाम को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है; न शशाङ्को न पावकः = न चन्द्रमा, न अग्नि ही प्रकाशित कर सकती है; यद्गत्वा न निवर्तन्ते = जिस परमपद को प्राप्त होकर मनुष्य पुनः संसार में नहीं आता; तद्धाम परमं मम = वही मेरा परमधाम है।

भावार्थ - उस अक्षरातीत परमपद परमधाम में, यहाँ विश्व की तरह सूर्य-चन्द्रादि की महत्ता-सत्ता एवं गौरवता की जरूरत नहीं, वहाँ तो सूर्य, चन्द्र, अग्नि इत्यादि तथा यावत् ब्रह्मलोक ही उन परमात्मा ब्रह्म स्वरूप से प्रकाशित होते हैं।

१०. "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः"
-(कठो, अ.२, व.२, श्लो. १५)।

अन्वयार्थ - न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं = उस ब्रह्मधाम में न सूर्य अपने प्रकाश का गौरव बता सकता है और न चन्द्रमा तथा तारागण ही; नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः = न तो विश्व की भाँति बिजलियाँ ही अपनी चमक-दमक दिखा सकती हैं, तो इस अग्नि तत्त्व की तो बात ही क्या करना।

भावार्थ - उस अक्षरातीत ब्रह्मधाम में न सूर्य अपने प्रकाश का गौरव

इसी परमधाम ब्रह्मधाम से ब्रह्मात्माएँ नश्वर स्वप्निक जगत नाटक देखने के लिए सुरतारूपेण इस जगत में अवतरित हुई हैं। उन ब्रह्मात्माओं की सुरताओं का वास्तविक (मुक्तिस्थान)

बता सकता है, न चन्द्रमा तथा तारागण ही और न तो विश्व की भाँति बिजलियाँ ही अपनी चमक-दमक दिखा सकती हैं, तो इस अग्नि तत्त्व की तो बात ही क्या करना। वहाँ के यावत् पदार्थ तो स्वयं उन ब्रह्म से ही प्रकाशित हैं।

११. इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः।
-(कठो, अ.१, व.३, श्लो. १०)।

अन्वयार्थ - हि इन्द्रियेभ्यः = क्योंकि इन्द्रियों से; अर्थाः = शब्दादि विषय; पराः = बलवान् हैं; च = और; अर्थेभ्यः = शब्दादि विषयों से; मनः = मन; परम् = पर (प्रबल) हैं; तु मनसः = और मन से भी; बुद्धिः = बुद्धि; परा = पर (बलवती) है; बुद्धेः = (तथा) बुद्धि से; महान् आत्मा = महान् आत्मा (उन सबका स्वामी होने के कारण)जिस तरह पिण्ड-शरीर में आत्मा महान् है, उसी तरह ब्रह्माण्ड-नारायणी सृष्टि में चौरासी लाख योनियों के जीवों के चेतन आत्मा के मूल आदिनारायण-महाविष्णु (क्षर पुरुष); परः = अत्यन्त श्रेष्ठ और बलवान हैं।

भावार्थ - इन्द्रियों से शब्दादि विषय बलवान् हैं। शब्दादि विषयों से मन परम प्रबल है तथा मन से भी बुद्धि अति बलवती है। इस बुद्धि से भी महान् शक्तिशाली बलवान् एवं अति श्रेष्ठ आत्मा चेतन है, क्योंकि उन सबका स्वामी होने के कारण जैसे इस पिण्ड-शरीर में आत्मा-चेतन अतिश्रेष्ठ

निज परमधाम यही अक्षरातीत ब्रह्मधाम है। वे सुरताएँ पुनः यहीं अपनी परात्माओं में प्राप्त होंगी। अतः अपनी-अपनी परात्मा में जागृत हो उठेंगी। यथा :-

इतहीं बैठे घर जागे धाम, पूरन मनोरथ हुए सब काम।
धनी महामत हंस ताली दे, साथ उठा हंसता सुख ले।।

-(तारतम सागर, प्रकाश हिं., प्र.३७/ चौ. ११२)।

उसी तरह ब्रह्माण्ड-नारायणी सृष्टि में सृष्टि के मूल आदिनारायण (महाविष्णु-क्षरपुरुष) चौरासी लाख योनियों के चेतन का मूल चेतन (आत्मा) अतिश्रेष्ठ बलवान है।

१२. महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः।।

-(कठो., अ.१, व.३, श्लो. ११)।

अन्वयार्थ - महतः = इस आदिनारायण क्षर पुरुष से; परम् = बलवती है; अव्यक्तम् = इससे भी उत्तम श्रेष्ठ अव्यक्तम - कूटस्थ अक्षर पुरुष है; अव्यक्तात् = अव्यक्त अक्षर से भी; परः = श्रेष्ठ है; पुरुषः = स्वयं उत्तम पुरुष अक्षरातीत; पुरुषात् = परम पुरुष से; परम् = श्रेष्ठ और बलवान्; किञ्चित् = कुछ भी; न = नहीं है; सा काष्ठा = वही सबकी परम अवधि (और); सा परा गतिः = वही परम गति है।

भावार्थ - अतः इस महत् स्वप्नवत् क्षरपुरुष-आदिनारायण से भी अति उत्तम श्रेष्ठ अव्यक्तम् - कूटस्थ अक्षर पुरुष है। इस अव्यक्तात् अक्षर पुरुष से भी उत्तमातिउत्तम, श्रेष्ठातिश्रेष्ठ, परमातिपरम वे परम्पुरुष स्वयं अक्षरातीत उत्तम पुरुष अद्वैत ब्रह्म परमात्मा हैं। उन उत्तम पुरुष

सर्वशास्त्र सम्मत अक्षरातीत दिव्य ब्रह्मपुर परलोक की राजधानी ''पच्चीस पक्ष'' की लीलाएँ सर्वात्माओं तथा जिज्ञासु आत्माओं को हृदयाङ्गम करना अत्यंत ही आवश्यक है। इस कामना पूर्ति के लिए ''श्रीमद्तारतमसागर ग्रन्थ तथा चर्चनी पटदर्शन'' के सम्पर्क में जाने का आग्रह करते हैं। इति समाप्तम् -

परमात्मा से परे न कोई लक्ष्य है, न कोई गति है। ''सा काष्ठा सा परागतिः'' अर्थात् वे ही सबकी परम अवधि हैं और वे ही परात्पर गति हैं। उनसे आगे कोई गति नहीं है।

१३. मलकूत ऊपर हवा सुंन, तिन पर नूर अक्षर।
नूर पार नूरतजल्ला, ए जो अक्षरातीत सब पर।।
-(सागर, प्र.५/चौ. १४)।

भावार्थ - इस ब्रह्माण्ड के वैकुण्ठ (मलकूत) से आगे शून्य-निराकार का विस्तार है। उसके आगे तेजोमय अक्षरधाम है तथा इस अक्षरधाम से भी परे अक्षरातीत परब्रह्म परमात्मा का परमधाम है, जो सर्वातीत, सर्वोच्च और सर्वोत्तम कहलाता है।

- समाप्तम् -

प्रणाम -

नोट :-

यशवंती कहे मेरे, श्रद्धा सुमन साथ जी!

आपश्री घर में बैठे-बैठे, जरूर मनन यह करना जी।
मनन करके प्रेम धर के, शीघ्र परमधाम आना जी॥

यशवंती सखी कहे.......

- प्रणाम्

सूचना

↓

इस पुस्तक के पश्चात् ''अपना धाम दर्शन'' ग्रन्थाधार अक्षर - अक्षरातीत-उत्तम पुरुष विषयक ज्ञान बोधार्थ के लिए ''चर्चनी-चित्रपट'' में जाने के लिए लेखक करबद्ध आग्रह करता है।

इति -

शुभमस्तु -

- विराट विज्ञान दर्पण -

❊ शुद्धि-पत्र ❊

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
विषय सूची	१२	इच्छाशक्ती	इच्छाशक्ति
२	२०	३-४-१०	२-१-१०
५	६	ब्रह्मप्रिया	ब्रह्मप्रिया
१६	१२	अक्षरातील	अक्षरातीत
२४	७	विरोजन	विरोचन
२६	१५	चौसष्ठ	चौसठ
२६	२०	सौसठ	चौसठ
४२	११	पावन	पवन
४४	२१	कुकल	कृकल
६०	१०	शुकदवे	शुकदेव
९२	१९	बोलोक	गोलोक
९३	१५	शब्द	शब्दब्रह्म
११२	२	सृष्टी	सृष्टि
१२२	६	उद्वारक	उद्धारक
१३४	५	प्रातिभासिकी	प्रतिभासिकी
११	१०	सृष्टी	सृष्टि
१५८	८	प्रतिनिधी	प्रतिनिधि
१७६	९	हुकूम	हुकम

* प्रार्थना - स्तुति *

श्रीकृष्ण अक्षरातीत सच्चिदानन्द
पारब्रह्म प्राणनाथ पूर्णपरमात्मा।

इसी नाम को भज - भज के सदा सुख लेओ
हे आत्मा !

तन-मन-धन आप दयो-सब तुम पे ब्रज-राज ।
मन भावे सोई करो - हाथ तुम्हारे लाज ॥

प्रणाम :-